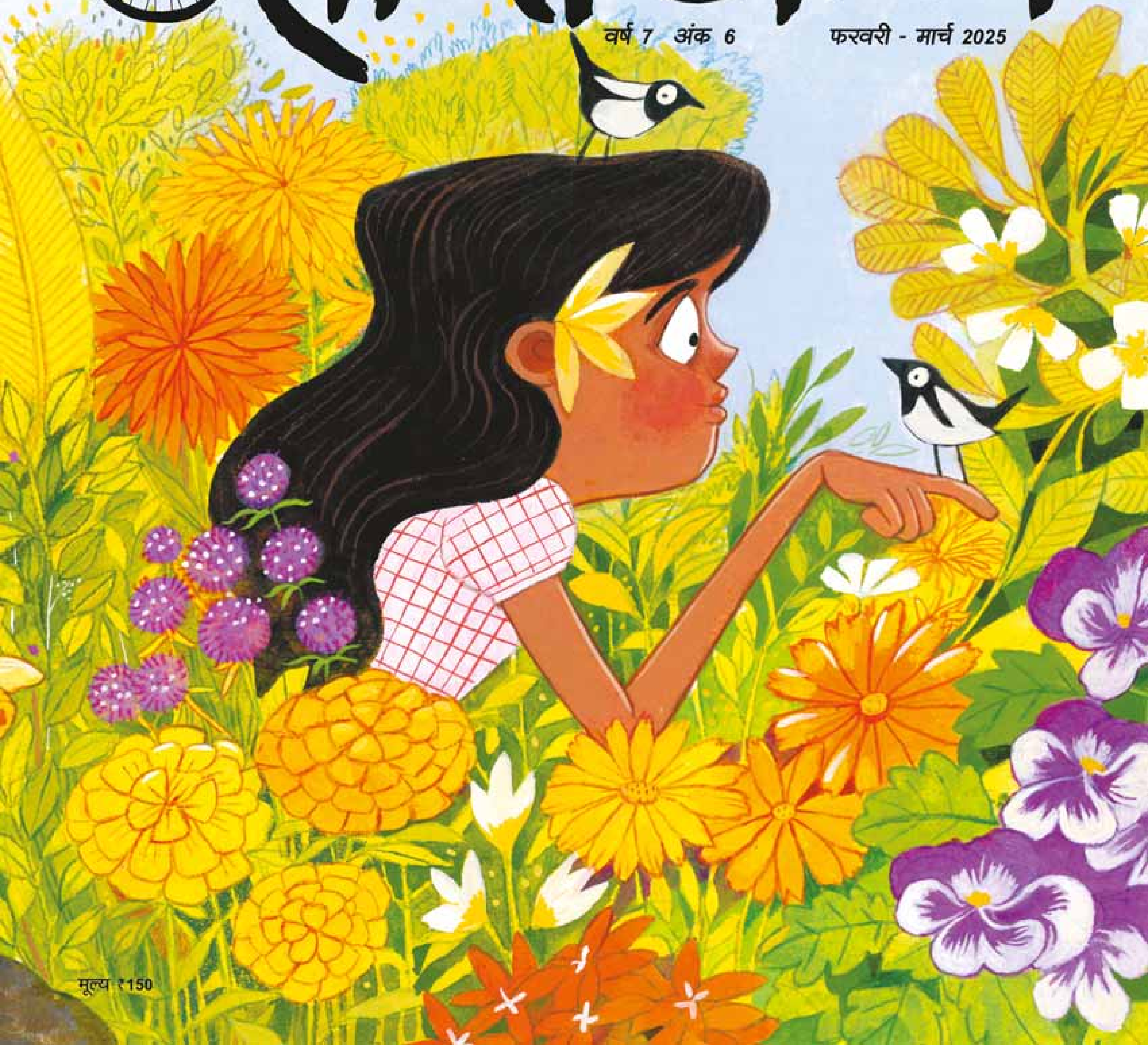
ISSN 2582-0133

साइकिल

बच्चों का दुमाहिया

वर्ष 7 अंक 6 फरवरी - मार्च 2025



मूल्य ₹150

साइकिल

बच्चों का दुमाहिया

वर्ष 7 अंक 6 फरवरी - मार्च 2025

सम्पादन सुशील शुक्ल, शशि सबलोक
सहायक सम्पादक तज़ीन अली
उपसम्पादक दिव्या सिंह
डिज़ाइन तापोशी घोषाल
कवर प्रिया कुरियन
वितरण अनीता शर्मा, सुनील भाटी

साल	कुल मूल्य (रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित)
1	1100 रुपए
2	2000 रुपए
3	3000 रुपए

एक प्रति 150 रुपए
(डाक खर्च अतिरिक्त)

भुगतान विवरण - बैंक ड्राफ्ट/चेक
इकतारा ट्रस्ट Ektara Trust के नाम नई दिल्ली में देय
ऑनलाइन ट्रांसफर - एच.डी.एफ.सी. बैंक,
बी-78 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
खाता नम्बर - 50100688089124, IFSC HDFC0000134 में भेजें।
ऑनलाइन खरीद की लिंक
https://www.ektarashop.in
भुगतान और वितरण की पूरी जानकारी
publication@ektaraindia.in पर दें।

EKTARA TRUST COLLECTION ACCOUNT
TID: 63087857

इस QR कोड को मोबाइल से स्कैन कर सभी UPI से भुगतान किया जा सकता है। भुगतान के बाद सम्पर्क, पता, ऑर्डर और भुगतान की तमाम जानकारियाँ साझा करें।

इकतारा **तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र**
2, मालवीय नगर, भोपाल 462003
फोन 0755-4939472, 9109915118, 9630097118
ई-मेल cycle@ektaraindia.in
वेबसाइट www.ektaraindia.in

बुद्धि से भरा घड़ा 03
लोमड़ी के बच्चे 04
लोकतंत्र क्या है? 08
पेड़ों से बोली चिड़िया 12
आकाश से गिरते उपग्रह 13
स्याही 14
अभी दिन के दो बजे थे 16
अदरक के फूल 18
पृथ्वी 20
शुतुर-ए-किताबख़ाना 22
चींटी का रास्ता 25
अम्मा जब बच्ची थी 26
चिली मिली 31
नीली लाइट 32
मैं तो नया हूँ 34
पापा होते तो... 42
जो सबसे पहले मिले 44
झूला 46
पानी बरसा 47
चित्र और कहानी 48
टुकु की डायरी 56
भैया की क़मीज़ 58
कौतुक 60
आकाश बन्धु 64
हल्लो राजा 67
फागुन की खुशियाँ मनाएँ! 68

भूल सुधार : साइकिल दिसम्बर-जनवरी 2025 अंक में टिड्डा कविता का चित्र दरअसल हबीब अली का है। और अमरूद कविता ध्रुव शुक्ल जी की है। इस गफ़लत के लिए माफ़ी चाहते हैं।

बुद्धि से भरा घड़ा मिट्टी से भरा घड़ा

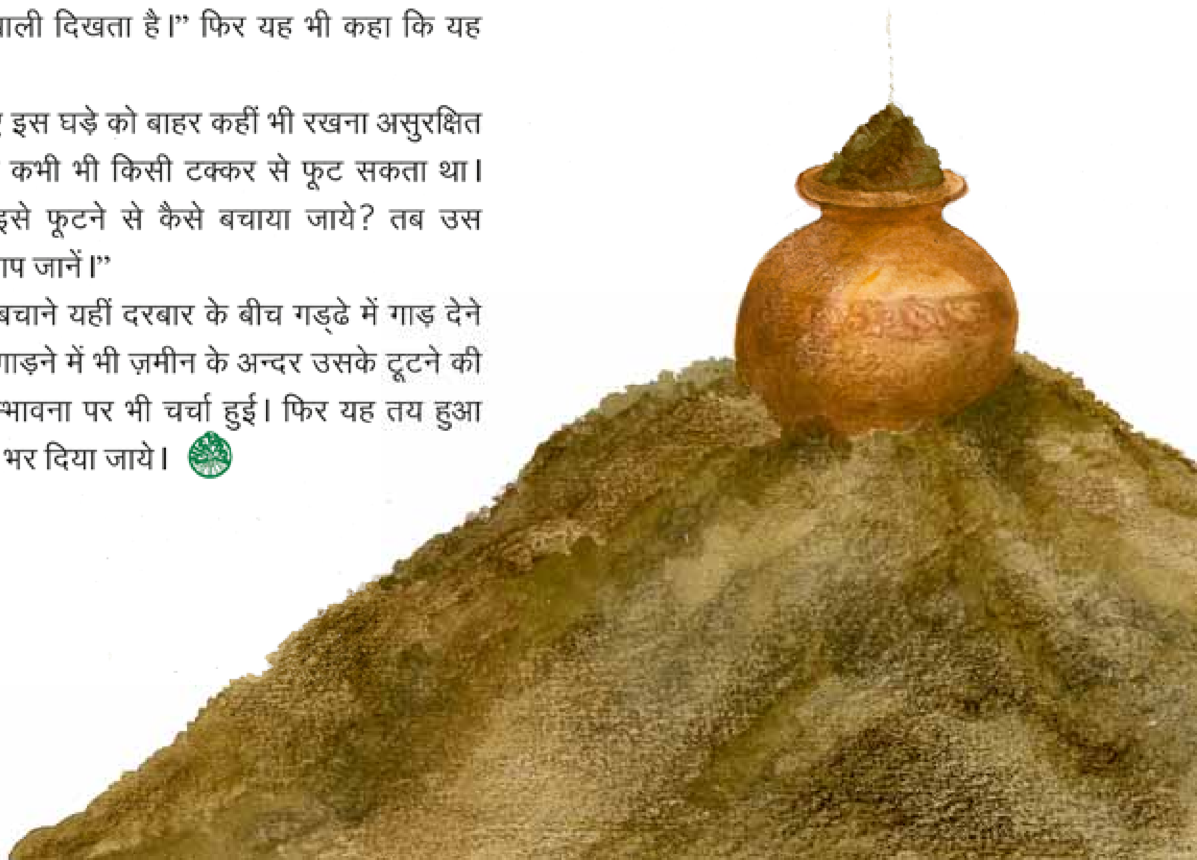
विनोद कुमार शुक्ल
चित्रः तापोशी घोषाल

दरबार में विद्वानों की कोई क़दर नहीं थी। मूर्खों का बोलबाला था। कि राजा के पास बुद्धि नहीं। राजा ने सिर पकड़कर आख़िरकार कहा, "बुद्धि कहाँ से लाऊँ! कोई लाकर दे दे।"

एक दिन सिर पर घड़ा रखे, कोई जैसे विद्वान हो, राजा के पास आया। उसने बताया कि घड़े में बुद्धि है। सिर पर घड़ा रखे वह व्यक्ति ऐसा दिख रहा था कि उसके सिर पर एक और सिर है। राजा के कहने से उस घड़े को देखा गया तो घड़ा ख़ाली दिखा। दरबारियों ने ज़ोर-से कहा, "घड़ा ख़ाली है।" तभी उस व्यक्ति ने कहा, "बुद्धिहीनों को घड़ा ख़ाली दिखता है।" फिर यह भी कहा कि यह घड़ा फूटने न पाये।

फूटने से बचाने के लिए इस घड़े को बाहर कहीं भी रखना असुरक्षित समझा गया। और यह कभी भी किसी टक्कर से फूट सकता था। दरबारियों ने कहा, "इसे फूटने से कैसे बचाया जाये? तब उस व्यक्ति ने कहा, "यह आप जानें।"

राजा ने इसे फूटने से बचाने यहीं दरबार के बीच गड्ढे में गाड़ देने का आदेश दिया। तब गाड़ने में भी ज़मीन के अन्दर उसके टूटने की आशंका होगी, इस सम्भावना पर भी चर्चा हुई। फिर यह तय हुआ उसे गाड़कर मिट्टी से भर दिया जाये।



लोमड़ी के बच्चे

प्रभात

चित्रः भार्गव कुलकर्णी

डूबती साँझ में जब मैं और सुनीता घूमने निकले तो खुशी भी हमारे साथ थी। घट रही रोशनी, कच्चा रास्ता, घासों, झाड़ियों और बबूल के पेड़ों के बीच हम चल रहे थे। हम रोज़ इधर आते हैं। बंजर ज़मीन में कहीं-कहीं बिल भी दिख जाते हैं। एक बार एक बिल में मैंने झाँक कर देखा कि भीतर क्या है। तो भीतर जो था वह भी देख रहा था कि बाहर क्या है। मैं ऐसा डरा कि कुछ न जानने में अपनी भलाई समझी। आगे बढ़ते हुए मेरी चाल में यादगार तेज़ी आ गई थी।

अचानक सुनीता को झाड़ियों में से निकलकर जाता कुछ दिखाई दिया। उसके हाथ के इशारे की ओर एक लोमड़ी भागती दिखी। इस झाड़ी से उस झाड़ी। इस जगह से उस जगह। वह भागे ही जा रही थी। तीन धड़कते दिल और तीन जोड़ी आँखें उसका पीछा करने लगीं। हमारी चाल तेज़ से तेज़ होती गई। हम भागते हुए उसका पीछा करने लगे। फिर थक-हार कर रुक गए।

वह ग़ायब हो गई थी। हमने एक-एक झाड़ी में, छोटे टीलों के पीछे, पत्थरों की ओट में, छोटी खन्दकों में, सब जगह देखा। वह कहीं नहीं थी। बस वो भागते शरीर का भूरा-सफ़ेद रंग, लम्बा पैना मुँह, एक पल के लिए ठहर कर हमें देखती आँखें और झबरीली पूँछ –





यही सब हमारी आँखों में अटक कर रह गया। हम इसे याद में बार-बार देख रहे थे। एक-दूसरे को बता रहे थे।

दूसरे दिन की डूबती साँझ। वही जगह, वही हम तीनों

"श्श्श्श्श!" मैं फुसफुसाया, "आवाज़ नहीं। बिलकुल भी नहीं।" मैं जानता था कि आप कितना ही बे-आवाज़ बबूलों-झाड़ियों को हटाओ, वे सुन लेते हैं। धुँधलके में झाड़ियों में बैठे हमें देख रहे होते हैं।

अचानक कुछ चार मीटर की दूरी पर वो भागते दिखी। हम उसके पीछे भागे नहीं। जहाँ थे, वहीं थमे उसे देखते रहे। झाड़ियों, आक, बबूलों के बीच से भागती हुई वह ग़ायब हो गई।

हम धीरे-धीरे आगे बढ़े।

"दो हैं।" मैं बोला।

"कहाँ?" खुशी बोली।

"उधर।" मैंने फुसफुसाते हुए इशारा किया।

झाड़ियों में कभी उसके कान दिखते। कभी पूँछ। वह चलता तो दिखाई देता। यह छोटा बच्चा था। अपनी माँ की तरह हमें देख वह भागा नहीं। बस हमें देखे जा रहा था। उसे पास जाकर देखने से हम खुद को रोक नहीं पाए। हमारे पास जाते ही वह ज़मीन में घुस गया।

ज़मीन में बिल था। हम पहली बार लोमड़ी का



घर देख रहे थे। जिसे हम बिल समझ रहे थे, वह लोमड़ी के घर का एक दरवाज़ा था। उस घर के ऐसे चार दरवाज़े थे। जो चार दिशाओं में खुलते थे। वे इतने ही बड़े थे कि उनमें लोमड़ी और उसके बच्चे घुस सकें। कुत्ते नहीं जो अकसर उधर टोह लगाए फिरते हैं। इन दरवाज़ों के रास्ते ज़मीन में भीतर जहाँ मिलते थे, वह असली माँद थी। जहाँ लोमड़ी और उसके बच्चे तमाम हमलावरों से सुरक्षित रहते थे।

हम लोमड़ी के घर तक पहुँच गए थे। चूँकि घर में उसका बच्चा था इसलिए आज वह भागकर कहीं नहीं गई थी। बल्कि लगातार इधर से उधर भागती हुई दिख रही थी। अँधेरा घिरने लगा था। अब वह एक जगह बैठ गई थी। अँधेरे में आँखें गड़ा-गड़ाकर हम उसे देखने की जुगत में थे। वह दिखना बन्द हुई तो हम वहाँ गए जहाँ वह बैठी थी। हमारे इस व्यवहार से तंग आकर वह भाग गई।

“हमें उसे इस तरह परेशान नहीं करना चाहिए।” खुशी ने कहा।

मैंने और सुनीता ने हामी भरी और घर आ गए।

पर अगली शाम हमें फिर चैन नहीं पड़ा। हम लोमड़ी के घर के पास से गुज़रे। एक नज़र वहाँ देखा भी। पर कुछ नहीं दिखा। लोमड़ी शायद अपने बच्चे को लेकर कहीं चली गई है। हमारा मन बुझ-सा गया। पर ठीक है। वह अपना भला-बुरा सब सोचकर ही गई है। आगे के दो-तीन दिन भी नहीं दिखी। हमने चप्पा-चप्पा छान मारा। कहीं कुत्तों ने तो नहीं खा लिया उसे? या इधर असुरक्षित महसूस कर वह जंगल में चली गई है? जंगल यहाँ से बहुत दूर नहीं है। सड़क के इस पार यह चरागाह है और उस तरफ़ रणथम्भौर के पहाड़ और घना जंगल। सुनीता ने कहा कि वह जंगल से चरागाह इसलिए आई होगी कि उसे अपने बच्चे को जन्म देना था। पाल-पोसकर बड़ा करना था। जंगल में बाघ, बघेरे जैसे बड़े जानवरों का डर ज़्यादा ही रहता है।

हफ़्ते भर बाद की एक शाम

खुशी ने आना बन्द कर दिया है। अब मैं और सुनीता ही आते हैं। आते तो हम घूमने हैं, पर हमारी आँखें इधर-उधर टोहती रहती हैं। हम आप ही अलग-अलग दिशाओं में घूमने लगते हैं। इस शाम, लोमड़ी के घर से लगभग दो सौ मीटर दूर, सुनीता बबूल के पेड़ों के बीच एकाएक ठहर गई। उसने इशारे से मुझे बुलाया। मैं दबे पाँव उधर गया। वहाँ लोमड़ी का बच्चा बैठा था। हम धीरे-धीरे उसके पास बढ़े। काफ़ी पास पहुँचे ही थे कि वह चौंक कर भाग गया। फिर वापस आया और ज़मीन में घुस गया। हम समझ गए कि उस घर को असुरक्षित पाकर लोमड़ी ने यहाँ नया घर बना लिया है। बल्कि बना ही रही है। क्योंकि अभी इसमें एक ही दरवाज़ा है। बाक़ी तीन दरवाज़े कहाँ बनेंगे, उनके निशान खोदे हुए हैं। हमारे लिए यह एक राहत की बात थी कि लोमड़ी ज़िन्दा है और वह जंगल में नहीं गई है।

कई दिन बीत गए। चरागाह में एक दिन एक ख़रगोश दिखा। लोमड़ी के घर के आसपास पक्षियों के पंख दिखते। एक दिन तो बिल के दरवाज़े पर कमेड़ी का आधा साबुत पंख पड़ा था। यानी खाना-पीना सब चल रहा था। पर वे हमें कहीं दिखते नहीं थे। इस बीच खुशी और सुनीता जयपुर चले गए।

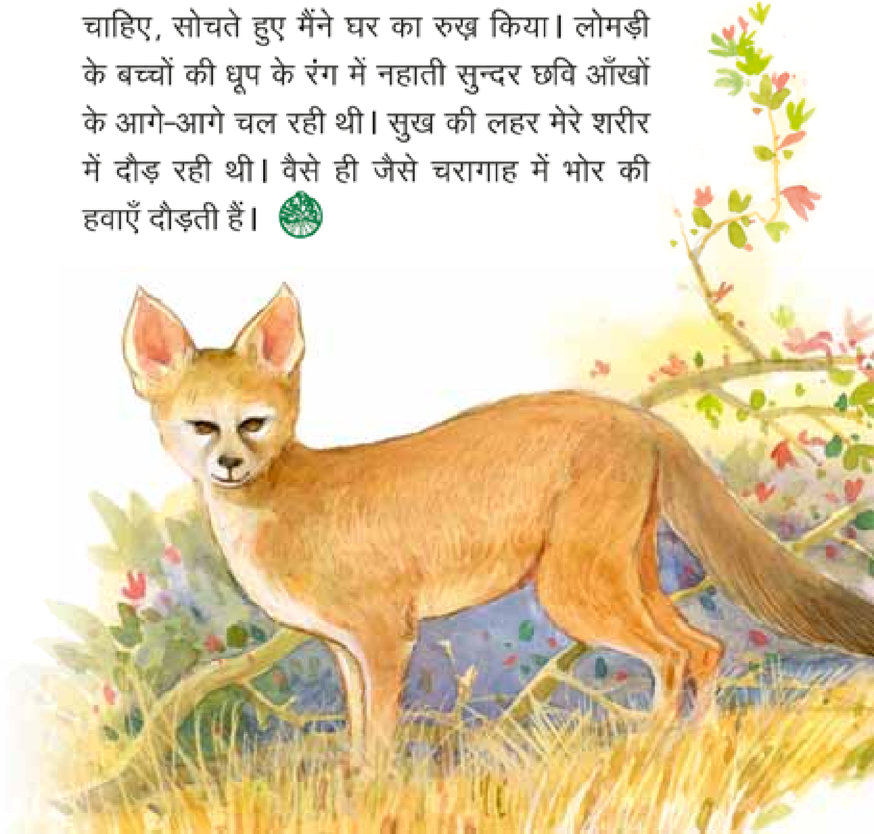
भोर होती, साँझ होती। मन में एक दबी हुई इच्छा थी कि लोमड़ी के बच्चे को उसके ज़मीन के घर में से बाहर आते कभी देखूँ।

अप्रैल महीने की एक अलसुबह मैं चरागाह की तरफ़ निकल गया। सुबह होने-होने को थी। पहाड़ों

के पार सूरज उगने को था। सूरज की लाली बादलों में फैल गई थी। मैं लोमड़ी के पुराने घर की तरफ़ गया। लोमड़ी वहाँ नहीं थी। पेड़ों और झाड़ियों के पत्ते भीनी हवा में हिल रहे थे। मैं पेड़ों की गन्ध लेता लोमड़ी के घर से कुछ दूर एक छोटे-से टीले पर बैठ गया। अचानक एक दरवाज़े में लोमड़ी के बच्चे का मुँह दिखा। उसने चौकन्नी नज़र से चारों ओर देखा। कोई खटका न पाकर वह बाहर आ गया। उसके पीछे-पीछे एक और बच्चा निकला। मैं यह जानकर रोमांचित था कि लोमड़ी के एक नहीं दो बच्चे हैं। मैं अपलक उन्हें चहल-क़दमी करते देखता रहा। पहले ने अपने छरहरे शरीर को धनुष की तरह तानकर एक ज़ोरदार अँगड़ाई ली। फिर दूसरे ने भी इसी तरह खुद को तरोताज़ा किया। भीतर माँद में इतनी जगह कहाँ कि हाथ-पैर फैला सकें। तभी मेरी नज़र की आहट से एक बच्चा थोड़ी दूर भागा। मैं इधर-उधर देखने लगा जैसे उन्हें नहीं देख रहा हूँ। वह बच्चा वापस दूसरे के पास आ गया। दोनों भूरी ज़मीन पर बैठ गए। एक-दूसरे से सटकर। सिर जोड़कर। भोर की गुलाबी किरणें उन्हें छूने आ पहुँचीं। गुलाबी किरणों में उनके कोमल शरीर चमक रहे थे। हवा में रोएँ लहरा रहे थे। वे बेखटके एक-दूसरे से गले मिल-मिलकर खेलने लगे। मैं पन्द्रह-बीस मिनिट तक उन्हें बस देखता रहा। वे कभी मुझे देख लेते, कभी नहीं देख लेते। फिर उनमें से एक ज़मीन में घुस गया। पीछे-पीछे दूसरा भी चला गया। मैं टीले से उठकर अभी थोड़ी ही दूर चला होऊँगा कि लोमड़ी दिखाई दी। वह भाग रही थी। कई कुत्ते उसका पीछा कर रहे थे। वह खेत की बाड़ में से खेत में चली गई। कुत्ते बाड़ से वापस लौट गए।

चरागाह में मैं कहीं भी होऊँ, अब जानने लगा था कि लोमड़ी कहाँ है। धूप काफ़ी बढ़ चुकी थी और लोगों की आवाजाही और हलचल बढ़ने लगी थी। कटी हुई सरसों का खेत, जिसमें सूखे फाँसे खड़े थे। एकाएक टिटहरियों के चीखें आने लगीं। दिल ने कहा कि अब लोमड़ी वहाँ है। दबे क़दमों से भागते हुए मैं खेत की तरफ़ गया। लोमड़ी भागे जा रही थी। टिटहरियों का झुण्ड उसका पीछा कर रहा था। टिटहरियाँ तब तक चीख़ती रहीं जब तक वह दिखती रही।

मुझे भी अब चरागाह में दिखना बन्द होना चाहिए, सोचते हुए मैंने घर का रुख़ किया। लोमड़ी के बच्चों की धूप के रंग में नहाती सुन्दर छवि आँखों के आगे-आगे चल रही थी। सुख की लहर मेरे शरीर में दौड़ रही थी। वैसे ही जैसे चरागाह में भोर की हवाएँ दौड़ती हैं।





लोकतंत्र क्या है?

सुन्दर सरुक्कई
चित्रः एलन शॉ
अंग्रेज़ी से अनुवादः तज़ीन अली

कहते हैं कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। यानी वोट डालकर अपनी सरकार चुनने वाले सबसे ज़्यादा लोग भारत में हैं। यह एक बड़ी बात है। स्कूल में तुमने लोकतंत्र के बारे में पढ़ा होगा। पर क्या कभी ख़्याल आया कि लोकतंत्र असल में है क्या? सिर्फ़ वोट देना? और अगर लोकतंत्र इतना भर है तो वोट देने और लोकतंत्र में क्या सम्बन्ध है? अगर लोगों से वोट देने का अधिकार ले लिया जाए तो भी क्या लोकतंत्र रहेगा? तो शुरुआत इसी बात से करते हैं कि लोकतंत्र के लिए वोट देना क्यों ज़रूरी है।

लोकतंत्र की परिभाषा

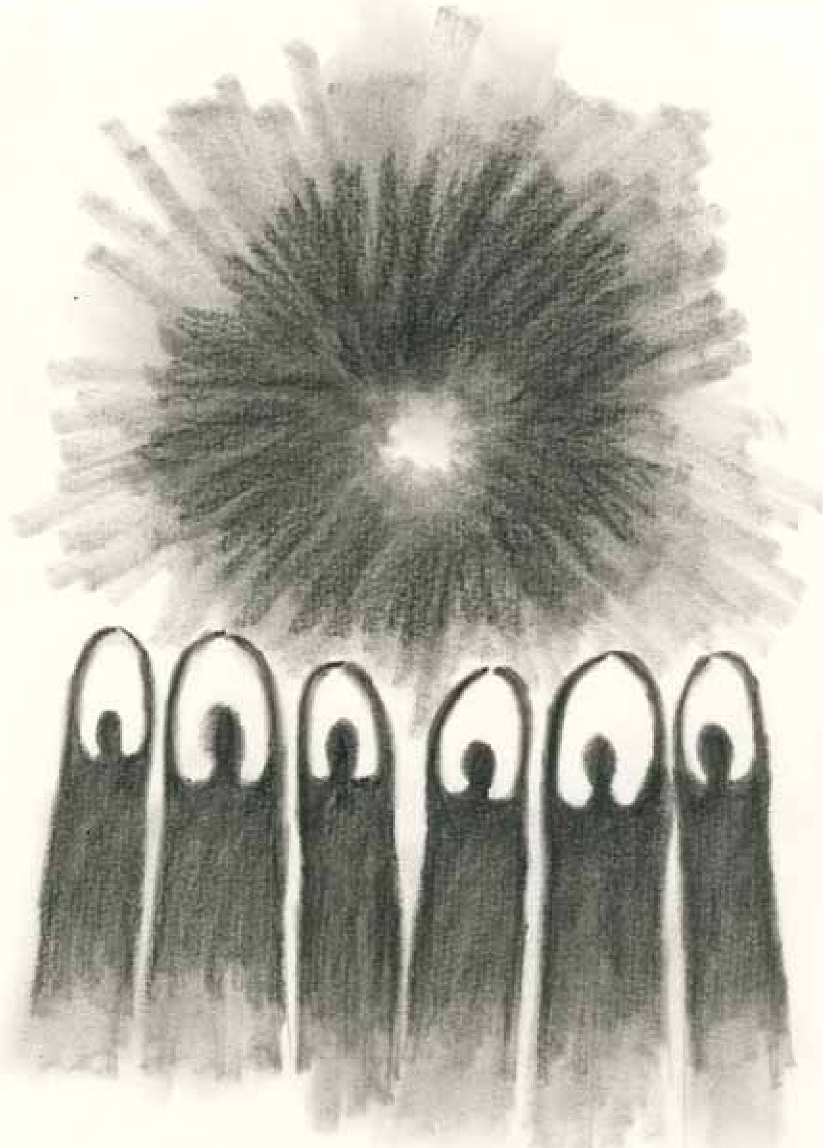
लोकतंत्र की एक जानी-पहचानी परिभाषा है - जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए।

यहाँ 'जनता के द्वारा' से आशय यह है कि एक लोकतंत्र में जनता पर किसी रानी, राजा का राज नहीं होता है। और न ही कोई ऐसा राज कर सकता है जिसे जनता नहीं चाहती। लोकतंत्र में जनता ही चुनती है कि वो किसकी देखरेख में आगे बढ़ना चाहती है। जनता ही चुनती है कि उनका प्रतिनिधित्व कौन करेगा।

पर लोकतंत्र सिर्फ़ इतना ही नहीं कि जनता ने 'किसी' एक को चुन दिया। चुने गए लोग जनता का प्रतिनिधित्व 'कैसे' करते हैं, यह मुख्य बात है। जिसे जनता चुनना चाह रही है, क्या वो सभी के मुद्दों और ज़रूरतों को लेकर प्रतिबद्ध है? या सिर्फ़ कुछेक गिने-चुने 'फ़ायदेमन्द' लोगों के लिए है?

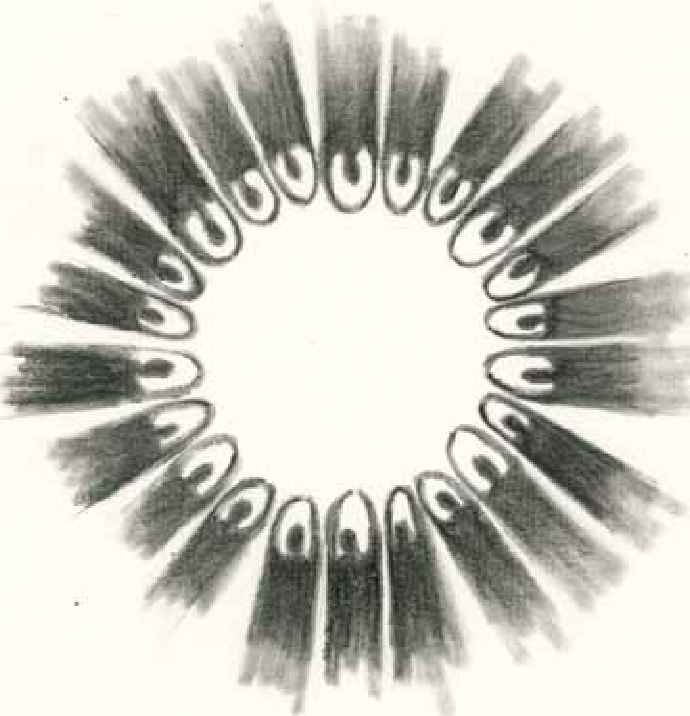
भारत एक लोकतंत्र है। तो क्या भारत के लोग भारत पर राज करते हैं? अपने आसपास देखने पर तो ऐसा नहीं लगता। सारे काम तो लोगों द्वारा चुने गए नेता करते दिखते हैं। लोगों को तो उनके कामों और निर्णयों की ख़बरें मिलती हैं। तो यह 'लोक' का 'तंत्र' कैसे हुआ? 'लोक' कौन हैं? तुम, मैं? हमारे परिवार के लोग? तुम्हारे सहपाठी? तुम्हारे अच्छे दोस्त? कम अच्छे दोस्त? बेघर, लाचार लोग? भारत





का एक-एक व्यक्ति, चाहे वो किसी भी धर्म, जाति और लिंग का हो।

थोड़ी देर थम कर इसी शब्द 'लोग' पर सोचते हैं। लोग यानी जनता यानी अवाम। यह जितना सरल है, उतना ही सघन भी है। अगर लोकतंत्र लोगों की अपनी सरकार है, तो उसमें सब ही शामिल होते होंगे। पर हम, सब के सब, इस देश पर राज करते दिखते नहीं हैं। वो सब प्रधानमंत्री, उनका मंत्रिमण्डल और सांसद आदि करते हैं। उनको गिनने चलें तो दस-पन्द्रह हज़ार लोग देश के अहम निर्णय लेने में और उन्हें लागू करने में शामिल होते हैं। जबकि हमारी कुल जनसंख्या एक ख़रब से भी ज़्यादा है। दस हज़ार लोगों का एक ख़रब लोगों के लिए निर्णय लेना जनता का राज तो नहीं हो सकता!



इस तरह देश की जनता को समझना लोकतंत्र को जानने की सबसे जटिल पर अहम कड़ी है। एक सफल और असफल लोकतंत्र के बीच यही अन्तर होता है कि किसने अपने लोगों को किस तरह समझा है। 'जनता' शब्द समाज के हरेक व्यक्ति को बराबरी से बरतता है। चाहे वो अमीर हो या ग़रीब, किसी भी धर्म, जाति या लिंग से ताल्लुक रखता हो - सब बराबर हैं।

अब बराबरी पर बात करते हैं। हम जानते हैं कि कोई भी दो लोग शत-प्रतिशत बराबर नहीं होते। डील-डौल, नज़रिये, आदतें, पसन्द-नापसन्द ऐसी कितनी ही चीज़ें हमको एक-दूसरे से जुदा करती हैं। पर यह हुई आपस की बात। पर एक लोकतांत्रिक सरकार के लिए ये भेद मायने नहीं रखते हैं। लोकतंत्र में सरकार सभी बाशिन्दों के लिए बराबरी से ज़िम्मेदार है।

यह ज़रूर है कि किसी भी सरकार के लिए इस बराबरी को सुनिश्चित करना मुश्किल होता है। पर सबको एक वोट का अधिकार देकर इस ओर एक क़दम बढ़ता है। ग़रीब हो या अमीर - हर व्यक्ति का एक ही मत होता है। क्या तुमने कभी अपनी क्लास में किसी चीज़ के लिए वोट किया है?

इसलिए एक लोकतंत्र में चुनाव बहुत बड़ा मौक़ा होता है। पर चुनाव मात्र से लोकतंत्र को पूरा जाना-समझा नहीं जा सकता। 'एक व्यक्ति, एक मत' महज़ एक तरीक़ा है समाज के बाक़ी तबकों तक बराबरी पहुँचाने का। यह तभी अहमियत रखता है जब यहाँ मिली बराबरी से बराबरी की एक लहर बहे। और धन, संसाधनों, मौक़ों, शिक्षा, सुरक्षा की ज़मीनों को सींच जाए। लेकिन अफ़सोस कि हमने लोकतंत्र को चुनाव तक ही सीमित कर दिया है।

इसलिए लोकतंत्र के बारे में सोचने के लिए हमें सबसे पहले बराबरी के बारे में सोचना होगा।

पेड़ों से बोली चिड़िया

नरेश सक्सेना
चित्रः प्रोइति रॉय





चिड़िया चुनती तिनके-तिनके
सूखे के या पेड़ गझिन के
नहीं जानती किनके-किनके
कितने उनके कितने इनके

बच्चे उड़े घोंसला खाली
चिड़िया पेड़ों से यह बोली
ले जाओ जितने हों जिनके
रखे नहीं थे मैंने गिनके





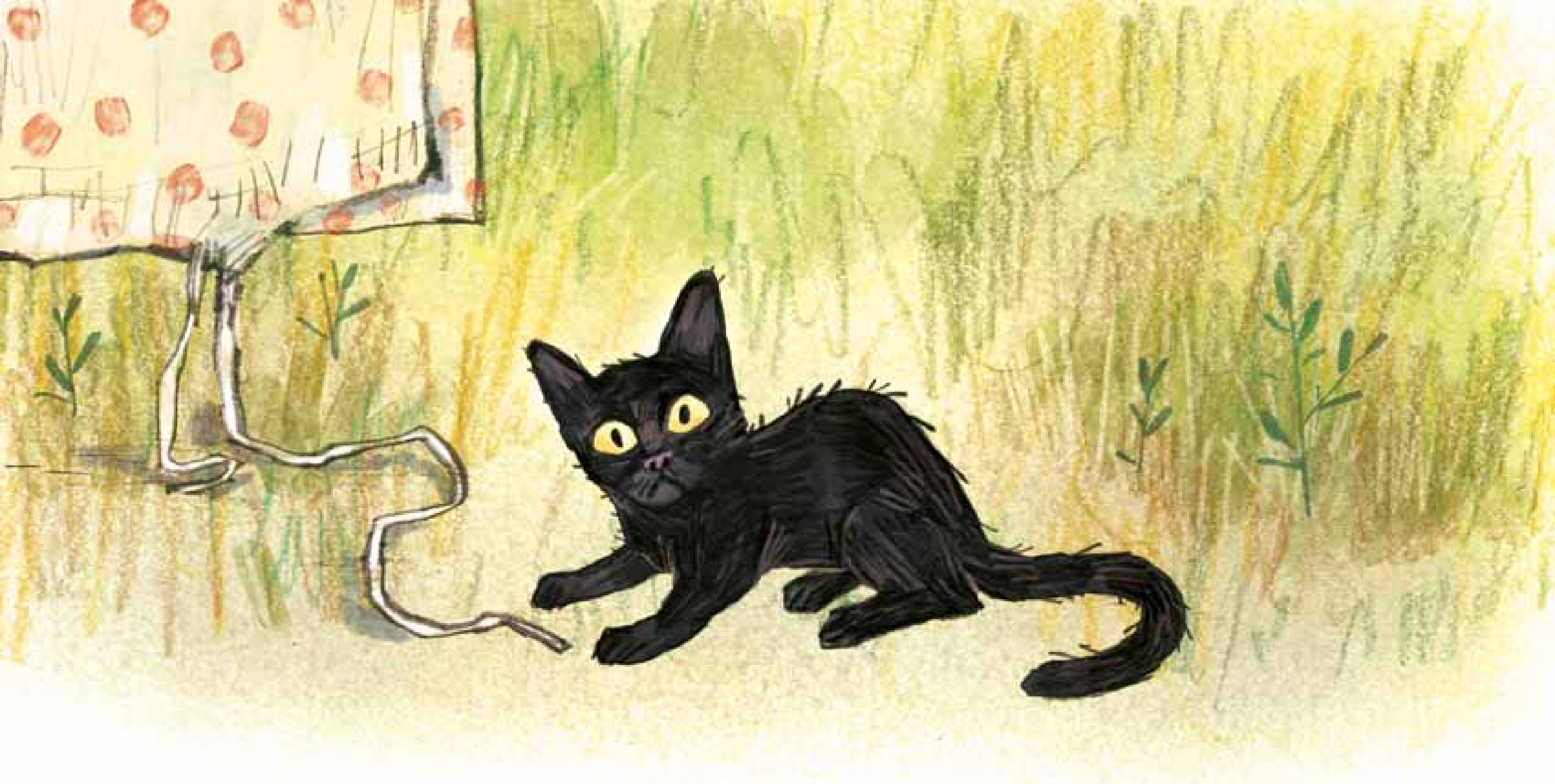
आकाश से गिरते उपग्रह

आशिष महाबल
अनुवादः शशि सबलोक
चित्रः तापोशी घोषाल

जाने कितने देश, जाने कब से, जाने कितने उपग्रह अन्तरिक्ष में भेज रहे हैं। किसी न किसी मक़सद से भेजे ये उपग्रह अन्तरिक्ष में चक्कर काटे जा रहे हैं। पर कब तक? जब इनकी ज़रूरत ख़त्म हो जाती है या जब ये काम लायक नहीं बचते तो इनका क्या होता है?

इस दिलचस्प सवाल का जवाब थोड़ा दुनियावी है। एक तो यह कि इन उपग्रहों पर पृथ्वी के ऊपरी वायुमण्डल की पतली सतह से खिंचाव पड़ता रहता है। इससे उनकी गति धीमी पड़ती जाती है। और जब इनका काम ख़त्म हो जाता है तो जबरन इन्हें रिटायर कर पृथ्वी के वायुमण्डल में आने दिया जाता है। जनवरी 2025 में 100 से अधिक स्टारलिंक कम्पनी के उपग्रह वायुमण्डल में आए और जल गए। यह एक भयावह घटना तो है ही। और इतनी संख्या में जलने से वायुमण्डल की आबोहवा भी बहुत बदल रही है। उनके जलने से एल्युमीनियम, ताँबे और लीथियम जैसी धातुएँ निकलती हैं। हमसे 50-85 किलोमीटर ऊपर की वायुमण्डलीय सतह पर ये जमा होती जाती हैं। हर साल यहाँ टनों में उपग्रहों का मलबा आ जाता है। उपग्रह ज़्यादा छोड़े जाएँगे तो मलबा भी बढ़ता जाएगा। ये धातुएँ अन्य वायुमण्डलीय गैसों से रिएक्ट कर सकती हैं। जिससे नए पदार्थ बन सकते हैं। जो वायुमण्डल की संरचना तक को बदल सकते हैं। हमें हानिकारक अल्ट्रावॉयलेट किरणों से बचाने वाली ओज़ोन परत पर भी इसका असर देखा जा सकता है। यह ज़रूर है कि इंटरनेट, जीपीएस, फ़ोन, टीवी, मोबाइल - इन्हीं उपग्रहों की बदौलत काम कर पाते हैं। पर यह हमारे आकाश की सेहत के लिए ठीक नहीं हैं, इसे भी याद रखना चाहिए।

एक काम करो। किसी साफ़ रात को थोड़ी देर तक आकाश देखते रहो। कोई चमकती चीज़ घूमती नज़र आए, तो वो उपग्रह हो सकती है। ध्यान रहे कि वो टिमटिमा नहीं, चमक रही होगी। सोचना कि उपग्रह कैसे घूम रहा होगा और उसके इस सफ़र का अंजाम क्या होगा।



स्याही

स्वर्णिका आहूजा
चित्रः राजीव आइप

जब मैंने कालू को पहली दफ़ा देखा था, तब मुझे कहाँ मालूम था कि वह भी है। मेरे आँगन में बिल्ली ने बच्चे दिए थे। मुझे दो बच्चे ही दिखे थे।

दिसम्बर का महीना था। हर शाम मैं उन दोनों बच्चों वाइटू और चितकबरू को खाना देती। ठण्डी हवाएँ चलती रहतीं। उस दिन मैं एक सफ़ेद शॉल ओढ़े खड़ी थी। तब मैंने उसे देखा। उसका काला फ़र अमावस की चादर की तरह था। जैसे वह काली रात से जन्मी एक बिल्ली की परछाई हो। इस परिवार में वह सबसे छोटी थी। उसमें कुछ ऐसा था कि मुझे भरोसा हो गया कि वह दिसम्बर की कड़ाके की ठण्ड को मात दे देगी। ठण्ड इस क़दर थी कि एक खटका लगा रहता। कि जाने कब उन बच्चों से हमारा साथ छूट जाए। सबसे पहले चितकबरू ने

आँगन छोड़ा। हम उसे ठीक से बाय भी न कह पाए। उसके बाद वाइटू। शायद दोनों ने बिल्ली बनने के बारे में सब कुछ सीख लिया था।

कालू अभी छोटी थी। वह अपना सीखना जारी रखे हुए थी। खेलती, उछलती। उसे हर चीज़ खेलने की चीज़ लगती। गत्ते का डिब्बा, झाड़ू, प्लास्टिक की बोतलें, तार पे लटकते मेरे कपड़े और उनके नाड़े। जब अपनी माँ की पूँछ से खेल कर थक जाती तो यहाँ-वहाँ यूँ ही दौड़ती। जब वह गोल हो कर सोती तो बिलकुल कागज़ पे छपी काली स्याही की बूँद लगती। वह बहुत तेज़ी से बड़ी हो रही थी।

एक दिन उसकी माँ गई तो लौटी नहीं। कालू रात को तीन-चार बजे रो-रोकर अपनी माँ को पुकारती रही। उसने यूँ ही कई रातें बिताईं। हम खाना तो दे देते पर माँ की गरमाहट नहीं दे पाते।

एक रोज़ मैं तार से कपड़े उतार लाई तो देखा मेरी शॉल ग़ायब है। मैं दीदी से पूछने गई। उसके कमरे का दरवाज़ा हलका-सा खुला था। झाँका तो देखा कि मेरी पश्मीना शॉल उसके बिस्तर पर बिछी हुई है। और कालू जी उस पर आटा गूँथ रही थीं। उसके छोटे-छोटे पैर एक लय में शॉल को गूँथ रहे थे। सुना था कि बिल्लियाँ अपनी माँ की याद में ऐसा करती हैं। पररररर-परररररररर-सी आवाज़ करते-करते कालू के पैरों के निशान पूरी शॉल पर छप चुके थे।

वो दिसम्बर के महीने की आख़िरी रात थी जब कालू ने हमें चुन लिया था।



अभी दिन के दो बजे थे

जादू, तीसरी, भोपाल
चित्रः एलन शॉ





अभी दिन के दो बजे थे। मैं और मेरे चार दोस्त - शाज़िल, साहिल, इब्राहिम, अरसलान - मछली पकड़ने गए थे। हमने ज़मीन से बीस फुट दूर एक सफ़ेद-सी चीज़ देखी। हमने सोचा कि वह कोई नारियल या पत्थर होगा। उसके पास हमें मछली कूदते हुए दिखी। शाज़िल ने उधर डोर फेंकी। उधर से चार मछलियाँ आईं। फिर हमने देखा कि उस सफ़ेद-सी चीज़ पर इंसान के कान थे। मैं और साहिल चीख़े, "अरे, पानी में लाश है!" सबने ग़ौर से देखा और बोले, "ये तो सच में लाश है।" भागते हुए इब्राहिम की मम्मी को बुलाया। उन्होंने मेरी मम्मी को फ़ोन करा। और बताया कि तालाब पे एक लाश है। मेरी मम्मी ने मेरे पापा को फ़ोन करके बताया। पापा तालाब पर आए। पुलिस को फ़ोन किया और सब बताया। थोड़ी देर बाद हमने पुलिस की गाड़ी का सायरन सुना। अभी तीन-चार मिनट हुए कि पूरा ख़ानूगाँव बड़े तालाब पर आ गया। कुछ लोग हँसी-मज़ाक कर रहे थे। कुछ लोग वीडियो बनाकर अप्लोड कर रहे थे। फिर पुलिस ने साहिल और बाक़ियों पर लट्ठ घुमाए। फिर एक दुबला-पतला गोताख़ोर ठुड्डी तक पानी से लाश को बाहर निकाला। वे बूढ़े थे। वे कड़े और नीले पड़ गए थे। फिर पुलिस ने उनके बेटे-बेटी को बुलाया। पहले बेटा आया। उसने जैसे ही उनका सिर देखा, अपना फ़ोन तालाब में फेंक दिया। जैसे ही बेटी आई, वह चीख़-चीख़ कर रोने लगी। उसकी आवाज़ कोई एक किलोमीटर तक पहुँच रही होगी। वह मारा-पीटी करने लगी और बोली, "पापा को उठाओ।" फिर एम्बुलेंस आई और लाश को ले गई। उस दिन से हमें तालाब पर जाने से डर लगने लगा है। क्या पता वह भूत बन गए तो...

अदरक के फूल

स्निग्धा दास
चित्रः तापोशी घोषाल



कुछ दिन पहले मैं एक फ़िल्म देख रही थी - 'अँखियों के झरोखों से'। इसे मैं पहले भी देख चुकी थी। पर दुबारा देखने पर दुबारा देखने के अलावा कभी-कभी पहली बार का छूटा भी नज़र आ जाता है। जैसा मेरे साथ हुआ। गाना गाते-गाते हीरो ने जब हीरोइन को फूल थमाया तो मैं चौंक गई। ये क्या? मैंने पॉज़ कर देखा। सचमुच वो सफ़ेद-गुलाबी-बैंगनी हल्दी का फूल था। किसका आइडिया होगा यह? गुलाब, कमल, रजनीगन्धा, गेंदा छोड़कर हीरोइन को हल्दी का फूल थमा देना। मैं तो कायल हो गई उस इंसान की। इतने सुन्दर फूल को किसी ने तो इस तरह सराहा। और मुझे बहाना मिल गया अदरक परिवार के फूलों पर यूँ बात करने का।

अदरक परिवार बहुत बड़ा है। कोई 1600 क़िस्में

हैं इसमें। हल्दी, इलायची, अम्बा हल्दी- सब इसी के हिस्से हैं। इस परिवार के फूल गुच्छों में लगते हैं। गेंदे की तरह। पर अमलतास जैसे फूलों के बीच दूरी होती है। गुच्छे में फूल एक आधार पर अलग-अलग घेरे में व्यवस्थित होते हैं। अदरक बोने के तक़रीबन चार से सात महीने बाद इनमें फूल लग सकते हैं। कुछ क़िस्मों में कलियाँ तो सफ़ेद या गुलाबी होती हैं पर फूल एकदम पीले। और कुछ में गुलाबी कलियों से सुर्ख़ लाल फूल खिलते हैं। सारे फूल गुच्छे में एक डण्ठल पर व्यवस्थित होते हैं। अम्बा हल्दी में तो पौधे को ऊपर से काटने पर कई फूलों के डण्ठल बन जाते हैं। यह मेरी माँ की खोज है। जब सालों पहले उन्होंने घर में अदरक, हल्दी और अम्बा हल्दी उगाई थी।

मेरी मानो तो इस सुन्दर फूल को देखने अदरक या हल्दी उगाने की ज़रा-सी मेहनत तुम भी कर लो। यह मेहनत कतई ज़ाया नहीं जाएगी। और यह भी जान जाओगे कि क्यों फ़िल्म में एक फूल को देखकर मैं यह लेख लिखने बैठ गई। काम आसान है। कच्ची हल्दी या अदरक का एक टुकड़ा ज़मीन में गाड़ दो। बहुत गहरे नहीं। कोई दो इंच मिट्टी के नीचे। मिट्टी में नमी बनी रहे इसका ख़्याल ज़रूर रखना। लगभग पाँच से सात महीने में, जुलाई-अगस्त में इसके फूलों नज़र आने लगेंगे। फूलों के गुच्छे को पूरा खिलने में एक महीना तक लग जाता है। इंडोनेशिया और मलेशिया में लोग सूप और सलाद में भी इनका उपयोग करते हैं। लगभग एक महीने बाद पत्तियाँ और फूल सूखने लगते हैं। यानी फसल तैयार हो गई है।

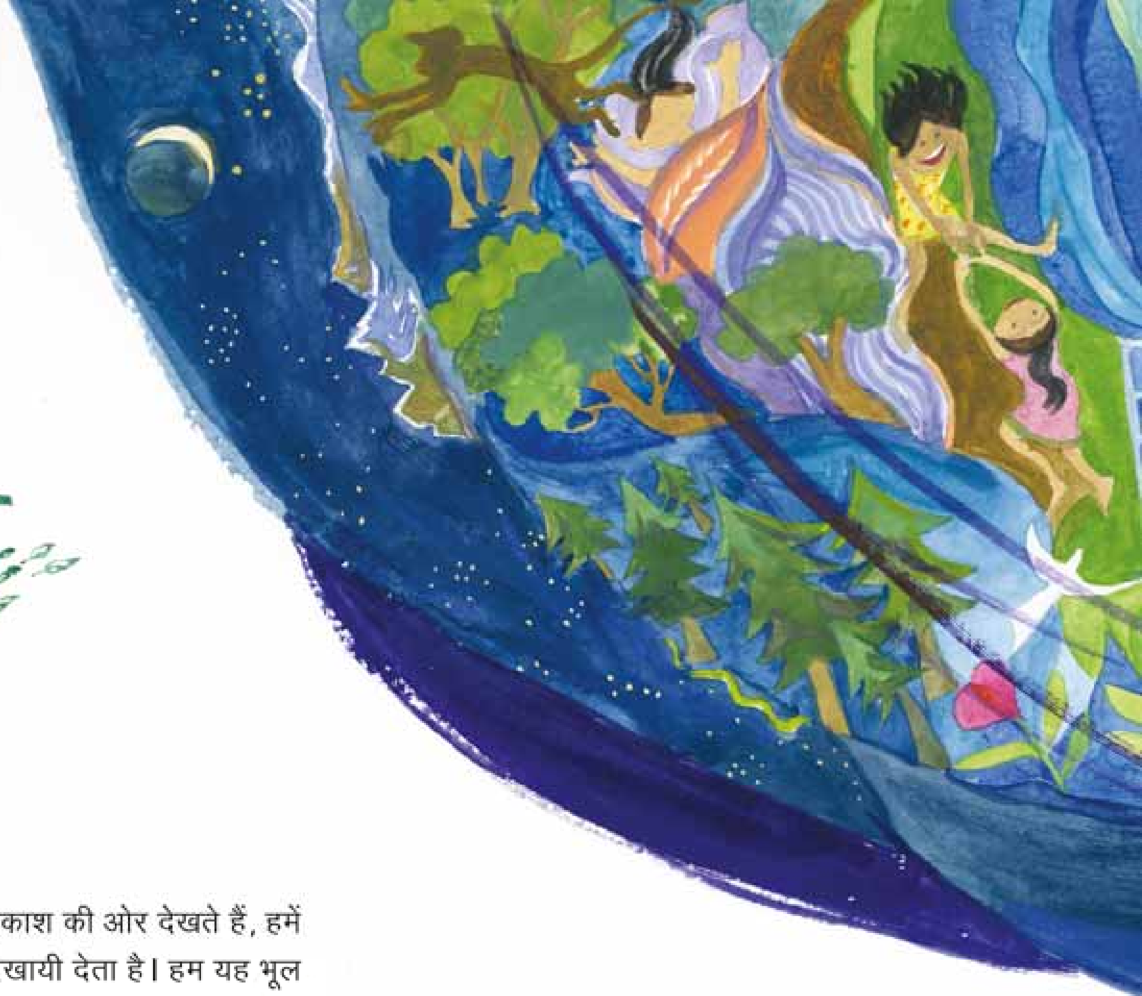
अच्छी सेहत के लिए अदरक और हल्दी दोनों लाजवाब हैं। और मन की सेहत के लिए इनके फूलों का जवाब नहीं। बस उन्हें तोड़कर किसी को देने के लिए मन बहुत पक्का करना होगा।

पेड़ की ओर जाते ठिठके गिलहरी और मैं पहले आप

हिमांशु व्यास

चित्रः तापोशी घोषाल





पृथ्वी

उदयन वाजपेयी
चित्रः तापोशी घोषाल

जब भी हम रात को आकाश की ओर देखते हैं, हमें वह तारों से भरा हुआ दिखायी देता है। हम यह भूल जाते हैं कि अगर कोई उनमें से किसी तारे पर खड़े होकर आकाश देखे तो हमारी पृथ्वी भी तारा ही नज़र आएगी।

हमें कभी नहीं भूलना चाहिए कि हम पृथ्वी नाम के तारे पर रहते हैं। यह तारा बाक़ी तारों के लिए कितना ही छोटा हो पर हमारे अपने लिए यह बहुत ही बड़ा है। इस पर हमारे जीने के लिए सब कुछ है। इस पर खाने को बहुत है, पीने को भी। हमारे लिए छाया बहुत है। धूप भी। घर हैं, यात्रा है, सर्दी है, बारिश में गिरता पानी, गर्मियों के दिन हैं (गर्मियों की छुट्टियाँ हैं!), अम्मा हैं। अम्मा की डाँट है। पापा हैं। बहन हैं, भाई है, रुमाली रोटी है। भिण्डी की तरकारी है, बहती हुई नदी है। ठहरा हुआ तालाब है। रम्भाती हुई गाय हैं। हाँफते हुए घोड़े हैं। और न जाने क्या-क्या है।

पृथ्वी आकाश में तैरता एक ऐसा जहाज़ है जिसमें बच्चे, बड़े, बूढ़े रहते हैं और उन सबको पालने का सामान भी उसमें काफ़ी है। गांधीजी कहते थे कि धरती पर हमारी ज़रूरतों को पूरा करने का पर्याप्त सामान है। हमारे लालच को पूरा करने का नहीं। पृथ्वी नाम का आकाश का जहाज़ ऐसा ही है। वह आकाश का जहाज़ नहीं तो और क्या है? पृथ्वी नाम का यह आकाश का जहाज़ हमें आकाश के नज़ारे दिखाने हमेशा कहीं से कहीं घूमता रहता है।

यह शायद अकेला तारा है जिस पर जीवन है। यानी जिस पर बन्दर हैं। एक पेड़ से दूसरे पर उछलते हुए। हाथी हैं, जंगल और मन्दिरों में डोलते हुए। चींटियाँ हैं। हाथी की सूँड में घुसने का सोचती



हुई। टट्टू हैं, पहाड़ों में सामान ढोते हुए। ठिगने पौधे हैं और ऊँचे देवदार के पेड़। और भी बहुत बहुत-सा जीवन है। पूरे ब्रह्माण्ड में अरबों-ख़रबों तारे हैं पर दो बच्चों के बीच की दोस्ती सिर्फ़ पृथ्वी पर हो सकती है। और कहीं नहीं। ब्रह्माण्ड में पानी कई जगह है पर पीने लायक पानी और मछलियाँ और कछुए केवल हमारी धरती पर हैं।

सच्ची बात यह है कि हम पृथ्वी पर रहते भर नहीं। हम खुद भी पृथ्वी हैं। जैसे पेड़-पौधे भी पृथ्वी हैं। शेर-चीते भी। हवा में फड़फड़ाती गौरैया और शान्त तैरती चील भी। रेंगते साँप और मिट्टी में बिल बनाते छछूँदर भी पृथ्वी ही हैं।

हम पृथ्वी पर चलते भर नहीं हैं, दरअसल पृथ्वी ही पृथ्वी पर चल रही होती है। हम थककर पृथ्वी पर सोते नहीं, दरअसल पृथ्वी का ही एक हिस्सा उस हिस्से पर सो जाता है जो थका नहीं है।

जब हम खुश होते हैं, पृथ्वी ही खुश हो रही होती है। जब हम उदास होते हैं, थोड़ी-सी पृथ्वी ही उदास हो रही होती है। जब हम झगड़ते हैं, थोड़ी-सी पृथ्वी आपस में लड़ रही होती है। और फिर दुखी हो जाती है।

हमें सोचना यह है कि हम ऐसे कैसे रहें कि सारी की सारी पृथ्वी खुश रह सके। खुश पृथ्वी पर धूप ऐसे चमकती है जैसे तुम्हारे चेहरे पर मुस्कान।





शुतुर-ए-किताबख़ाना

फ़रह अज़ीज़

चित्रः भार्गव कुलकर्णी

लाव-लश्कर के साथ चलना बादशाहों की शान होती थी। लेकिन मुग़ल बादशाह हुमायूँ एक ऐसे राजा थे जिन्हें अपनी किताबों के साथ चलना ख़ूब पसन्द था।

वो जब भी सफ़र पर जाते, अपनी शाही किताबख़ाने की सारी की सारी किताबें अपने दो ऊँटों पर लादकर ले चलते। क्या पता कब किस किताब को पढ़ने का दिल कर जाए! यहाँ तक कि जंग में भी उनके दोनों ऊँट किताबों का अम्बार लादे उनके साथ-साथ चलते थे। अपनी इस चलती-फिरती लाइब्रेरी को वो शुतुर-ए-किताबख़ाना कहते थे। यानी ऐसे ऊँट जो लाइब्रेरी हों। फ़ारसी ज़बान में ऊँट को शुतुर कहा जाता है।

सन 1540 में सूर सल्तनत के राजा शेर शाह सूरी ने हुमायूँ को जंग में हराकर दिल्ली में उनकी गद्दी पे क़ब्ज़ा कर लिया था। अपनी जान बचाने के लिए हुमायूँ को हिन्दुस्तान छोड़ के सिन्ध भागना पड़ा था। अपने राज-पाट और ऐशो-आराम की सब चीज़ें उन्होंने यहीं छोड़ दीं। लेकिन अपनी किताबें नहीं छोड़ीं। वो अपनी सारी किताबों को अपने दो ऊँटों पर लादे अपने साथ ले चले।

अगले 10-12 सालों में हुमायूँ ने लगातार सफ़र किया और बहुत सारी लड़ाइयाँ भी लड़ीं। हिन्दुस्तान से सिन्ध, सिन्ध से बलूचिस्तान, फिर अफ़ग़ानिस्तान, और अफ़ग़ानिस्तान से ईरान। सफ़र कितना भी मुश्किल और जोख़िम भरा होता, उनके दोनों शुतुर-ए-किताबख़ाना उनके साथ-साथ ही चलते।





एक बार की बात है। उनका क़ाफ़िला पहाड़ों के रास्ते अफ़ग़ानिस्तान जा रहा था। रास्ते में इतनी बर्फ़बारी हुई कि पहाड़ पर आगे जाने का रास्ता बन्द हो गया। ऐसे में सारे सामान को लेते चलना नामुमकिन था। हुमायूँ को अपना सारा सामान पीछे छोड़ना पड़ा। खाने-पीने को भी कुछ नहीं बचा पाए। लेकिन इस हाल में भी उन्होंने अपने किताबख़ाने को नहीं छोड़ा। खाने को भले कुछ न हो लेकिन पढ़ने को किताबें तो उनको चाहिए थीं।

एक बुरा वक़्त ऐसा भी आया जब उन्होंने अपनी यह नायाब लाइब्रेरी खो दी। सन 1551 में उनके बाग़ी भाई कामरान की फ़ौज ने अफ़ग़ानिस्तान के नज़दीक किपचाक पास में उन पर हमला कर दिया। हुमायूँ ज़ख़्मी हो गए और उनके दोनों ऊँट किताबों समेत उनसे बिछड़ गए। हुमायूँ को इस बात का सदमा ज़रूर रहा होगा क्योंकि बुरे से बुरे वक़्त में भी उन्होंने इन किताबों को सम्भाले रखा था। उनके ऊँट भी ज़रूर बिछड़कर परेशान होंगे।



शायद इसीलिए, सन 1553 में एक दिन अचानक हुमायूँ के दोनों ऊँट अपने आप उनके पास वापस चले आए। ताज्जुब की बात रही कि सारी किताबें भी उनकी पीठ पर सही-सलामत मौजूद थीं। वो कैसे लौटे, ये जानना मुश्किल है। पर हुमायूँ खुश तो बहुत हुए होंगे।

ये ऊँट जो किताबें ढो रहे थे, वो कोई आम किताबें नहीं थीं। वो हुमायूँ और उनके पिता मुग़ल बादशाह बाबर की शाही किताबें थीं। इनमें से एक किताब बाबरनामा भी थी जो दुनिया की सबसे मशहूर पुरानी किताबों में से एक है। इस किताब में बादशाह बाबर ने अपनी ज़िन्दगी के बारे में खुद लिखा था। अगर हुमायूँ और उनके ऊँटों ने ये किताबें नहीं बचाई होतीं, तो दुनिया में बाबरनामा जैसी किताब की कोई ख़बर नहीं होती। उसमें लिखे मुग़ल इतिहास को भी किसी ने नहीं पढ़ा होता।

सन 1555 में जब हुमायूँ वापस हिन्दुस्तान लौटे तो उनका ऊँटों वाला किताबख़ाना भी वापस आया। हुमायूँ ने सूर सल्तनत को हराकर फिर से हिन्दुस्तान पर राज किया था। वापस आकर उन्होंने अपने शाही किताबख़ाने को फिर से बनाया। अपने आख़िरी वक़्त पर भी बादशाह हुमायूँ अपनी लाइब्रेरी में ही थे।

साहित्य के साथ-साथ हुमायूँ कला के भी शौक़ीन थे। उनके क़ाफ़िले में उनकी किताबों के अलावा मुग़ल कलाकार भी शरीक होते थे। बर्फ़ीली पहाड़ियों पर सारा सामान खो देने के बाद भी, उन्हें कला सूझ रही थी। उस हाल में जब उन्हें एक खूबसूरत चिड़िया दिखी तो उन्होंने अपने चित्रकार से उस चिड़िया की तस्वीर बनाने को कहा था।



चींटी का रास्ता

चित्रः तापोशी घोषाल

चींटियों को देखोगे तो लगेगा कि वाह, क्या समझ और क्या तालमेल है। जैसे सबको मालूम है कि कहाँ जाना है, कहाँ से जाना है। थमकर उन्हें देखोगे तो पाओगे कि उनके रास्ते आगे बढ़ने वाले तय करते हैं। रास्ता दिखाने वाली चींटियाँ स्काउट चींटियाँ कहलाती हैं। ये स्काउट चींटियाँ बिलों से निकलकर खाना खोजने और बाक़ी ज़रूरी रेकी करने का काम करती हैं।

चींटियों को अपने मतलब की चीज़ तक पहुँचने का सबसे छोटा रास्ता मालूम होता है। यह बात कई सालों पहले सामने आ चुकी है। चींटियाँ इस दुनिया की बड़ी जगह, बड़े जीवों के बीच रहते हुए यह सब करती हैं। ऐसा वे सिर्फ़ अपने से आगे चल रही चींटियों को देखते हुए नहीं करती हैं। बल्कि वो अपनी गन्ध से रास्ता मार्क करते हुए चलती हैं। यह काम वो फ़ेरोमोंस नाम के रसायन से करती हैं। हर प्रजाति के अपने क़िस्म के फ़ेरोमोंस होते हैं। इन्हीं से वे आपस में काम की बातें करती हैं। चींटियों के फ़ेरोमोंस के ट्रेस और ट्रेल को क़रीब से देखते रहने वाले वैज्ञानिकों ने पाया कि फ़ेरोमोंस सबसे अधिक मात्रा में सीधे रास्ते पर पाए जाते हैं।

पर इस सीधेपन को इतना सीधा भी मत जानना। सीधा रास्ता सबसे कम दूरी का होता है इसलिए उसको लेते हैं। पर हर चीज़ को जाता हुआ सीधा रास्ता कम देरी का हो, यह ज़रूरी नहीं। इस बात का भी चींटियों को ठीक-ठाक अन्दाज़ा होता है।

इस बात के कई प्रयोग इंटरनेट पर मौजूद वीडियो में देख सकते हो। चींटियों से कुछ दूरी पर चीनी के दाने रखे गए। उनके रास्ते में चिकने और थोड़े खुरदुरे काँच के दो टाइलनुमा टुकड़े बिछा दिए। शुरू में स्काउट चींटियाँ रास्ता भाँपते हुए दोनों काँचों पर चलकर चीनी के दानों तक पहुँचीं। पर धीरे-धीरे लगभग सारी बाद की चींटियाँ जितनी दूर के लिए मुमकिन था, उतनी दूर चिकने काँच पर चलीं। फिर बची हुई दूरी खुरदुरे काँच पर चलकर चीनी तक पहुँची।



अम्मा जब बच्ची थी 1

चींटियों की गाय

शम्पा शाह

चित्रः प्रिया कुरियन

हुआ यूँ कि स्कूल की छुट्टी के बाद देवना अम्मा का हाथ खींचने लगी। उसके एक हाथ में अठन्नी भिंची थी। और दूसरे से वो अम्मा को खींच रही थी। "जल्दी चल, मेरी जीप आ जाएगी।" वे फाटक के बाहर वाली दद्दी के पास पहुँचीं।

दद्दी की गटागट और सन्तरी गोलियाँ दोनों को पसन्द थीं। आज वहाँ और भी कई चीज़ें थीं - कच्चा नारियल, कबीट और एक हरा-पीला चमकता हुआ कंगूरेदार फल।

"ये क्या है?" अम्मा ने पूछा।

देवना बोली, "तुझे नहीं पता? यह कमरख है। माने चींटियों की गाय!"

सुनकर अम्मा इतनी ज़ोर-से उछली कि उनकी झूलेदार डबल चोटी देवना की क्लिप में जा अटकी।

"दद्दी! कमरख दे दो।" देवना ने अठन्नी आगे बढ़ाते हुए कहा।

दद्दी ने कमरख को पानी से धोया और उसके गोल-गोल टुकड़े काटकर एक दोने में रख दिए। काटने के बाद उनका रस और भी चमक रहा था। अब वो मन्नू दीदी के कुर्ते में टँके पीले सितारा फूल लग रहे थे। देवना ने दोना अम्मा की ओर बढ़ाया। "जल्दी खाओ! मेरी जीप आ जाएगी।"

अम्मा ने एक टुकड़ा मुँह में रखा। मुँह खट्टे-मीठे रस से लबालब हो गया।

"चींटियाँ रोज़ ये पीती हैं?"

"और नहीं तो क्या? अच्छा है न?"

"बहुत!" अम्मा की आँखें गेंदा फूल हो गईं।

पर चींटियाँ इसे अपने बिल में कैसे ले जाती होंगी?"

"ऊँह! ऊपर से नहीं ले जातीं। उनके पास पहले से होती है। चींटियों के अपने शहर होते हैं, तुझे नहीं पता? मेरी जीप आ गई। बाक़ी का तू खा ले। कल फिर खाएँगे! बाय..."

अम्मा ने देखा, दोने में अभी भी तीन सितारा फूल चमक रहे थे। दोना मुट्ठी में दबा, अम्मा ने अपनी पक्की सहेली विद्या के घर की ओर दौड़ लगा दी। विद्या का घर अम्मा के घर के पास था। अम्मा हाँफते-हाँफते वहाँ पहुँची और ज़ोर-से आवाज़ लगाई। पर कोई आवाज़ लौट के न आई। अम्मा ने भीतर झाँका। आँगन में विद्या की माँ मटके में दही बिलो रही थीं। वे

बोलीं, "अबे स्कूल से नई आई बिद्या। आज उके स्कूल में खेलकूद प्रतियोगिता आय।"

"ठीक है।" कहकर अम्मा सोच में डूब गई। क्या अब करें? विद्या के लिए इन्हें छुपाए रहें या बाई को खिलाएँ या मन्नू दीदी को? या छुटकी दीदी को? या माँ को?

उल्टे सब उस पर बरसने लगेंगे, "क्या-क्या अंट-शंट खाती है। इसीलिए तो बार-बार टॉन्सिल होते हैं!"

अम्मा ने बचे हुए तीनों टुकड़े एक साथ मुँह में डाल लिए।

खट-मिट्ठे रस से उसकी आँखें मुँद गईं। चींटियों की गाय का दूध! ऐसा स्वादिष्ट दूध पीने से ही चींटियाँ इतनी फ़ुर्तीली और मेहनती होती होंगी!

अम्मा को अपने भीतर चींटियों वाली फ़ुर्ती महसूस हुई। वह टेढ़ा-मेढ़ा भागती हुई घर की ओर दौड़ पड़ी।

घर में बस्ता पलंग पर फेंका और छुटकी दीदी को बताने भागी। देखा, उनकी सहेली शब्बो आई हुई थी। दोनों सिर से सिर जोड़े पढ़ाई कर रही थीं।

वो भागकर मन्नू दीदी के कमरे में घुसी। उसे देखते ही दीदी ने मुँह पर उँगली रखकर एकदम चुप रहने का इशारा किया। वो रेडियो पर बज रहे गाने को कॉपी में लिख रही थी – "गरजत बरसत सावन आयो रे।"

वो भागती हुई रसोई में बाई के पास पहुँची, "बाई! सुनो, आपको चींटियों की गाय पता है?"

"अरे! आ गई री मौड़ी! जा जल्दी से भाग के लाला चाचा की दुकान से मेथीदाना ले आ। कद्दू की सब्ज़ी उके बिना नई बन सकत। अब मों न बना मोड़ी। जे रुपैया ले और जो बच हैं वो तुमाय! ठीक? अब भाग। खाने में वैसेइ देरी हो गई है।"

लाला चाचा की दुकान से अम्मा मेथीदाना लेकर आई तो बाई ने बताया कि ऊपर घर से माँ उसे कई बार आवाज़ लगा चुकी हैं।

अम्मा ने बस्ता फिर से कन्धे पर लटकाया और सीढ़ियाँ फलाँगने लगी। बस्ता मेज़ पर रखा तो माँ की आवाज़ आई, "टुकटुक, जूते फिर नीचे उतार आई? सुबह स्कूल जाते समय फिर कहाँ से मिलेंगे?"

अम्मा अपने घर में कम, नीचे मास्साब-बाई के घर में ज़्यादा रहती थी। वहाँ खूब रौनक रहती। इतने सारे लोग रहते।

अम्मा को ज़ोर की भूख लगी थी। थाली में गुइयाँ की सब्ज़ी देखकर भूख और तेज़ हो गई।

"माँ, तुम नहीं खाओगी खाना?" अम्मा ने अपनी अम्मा से पूछा।

"नहीं, मेरी किताब के दस-बारह पन्ने बचे हैं। उन्हें पढ़े बिना नहीं खा सकती!"

पिछले कई दिनों से अम्मा की माँ एक मोटी-सी किताब पढ़ने में ऐसी लगी थीं कि न उनको भूख लगती थी, न प्यास! अम्मा को हैरानी होती। भला किताब पढ़ने में भी किसी को इतना मज़ा आ सकता है?

उस शाम अम्मा को माँ-पापा के साथ नाटक देखने जाना था। अम्मा ने झट-पट स्कूल का काम पूरा कर दिया। नाटक घड़ी बनाने वाले सबसे पहले आदमी के जीवन पर था। अम्मा को नाटक में कुछ समझ में आया। और बहुत कुछ समझ में नहीं आया। जैसे यही कि लोग घड़ी की खोज से खुश थे या नाराज़? घड़ी बनानेवाले की पहले तो सबने खूब जय-जय की। पर बाद में उसे मारने पर तुल गए! ऐसा क्यों हुआ?

फिर भी, अम्मा को नाटक देखने में बड़ा मज़ा आया।

रात को बिस्तर पर लेटे-लेटे अम्मा को एक बार फिर से चींटियों की गाय की याद हो आई। वो सोचने लगी कि क्या चींटियों के पास भी घड़ी होती होगी? 'एलिस इन वण्डरलैंड' के ख़रगोश के पास कितनी बढ़िया घड़ी थी जिसे वो बार-बार जेब से निकालकर देखता था!

चींटियों का शहर, उसमें ढेर सारे मोहल्ले, गलियाँ, सड़कें। एक-दूसरे से सटे मकान ही मकान। छोटे मकान, बड़े मकान। शहर के बीचोंबीच बाज़ार। बाज़ार के बीचोंबीच घण्टाघर। और घण्टाघर में लगी बड़ी-सी घड़ी। तभी उस बड़ी-सी घड़ी का घण्टा बज उठा - टन्न! टन्न! टन्न!

घण्टा बजते ही हर घर से निकलकर चींटियाँ आने लगीं। ख़बर मिली कि कोई उनकी गाय चुरा ले गया है! चींटियाँ भयानक गुस्से में हैं। वो चोर को ढूँढ कर रहेंगी। मिनटों में सारी सड़कें, गलियाँ चींटियों से भर गईं। तिल रखने तक की जगह न बची।

"उठो टुकटुक! स्कूल जाना है कि नहीं?" माँ उसे आवाज़ लगा रही थीं।

आँखें मलती अम्मा उठी। सबसे पहले, मोर के चित्र वाली माचिस की डिब्बी में अठन्नी रखी। वही जो कल बाई से मेथीदाना लाने पर मिली थी। फिर डिब्बी को बस्ते में सबसे नीचे रखा। और स्कूल को दौड़ पड़ी। दिनभर बस छुट्टी होने का इन्तज़ार किया। पता नहीं क्यों आज देवना स्कूल नहीं आई थी। छुट्टी की घण्टी बजते ही अम्मा भागकर दद्दी के पास गई। अभी तक दद्दी के पास कोई बच्चा नहीं पहुँचा था। अठन्नी बढ़ाते हुए अम्मा ने उनसे कमरख माँगा। लगे हाथ यह भी पूछ लिया कि दद्दी, आप कमरख कहाँ से लाती हो?

"झाड़ से तोड़कर लाती हूँ और कहाँ से?"

"पर यह तो..." अम्मा का वाक्य अधूरा ही रहा क्योंकि अब तक दद्दी की दुकान पर आठ-दस बच्चे जमा हो चुके थे।

कमरख का एक भी टुकड़ा खाए बिना अम्मा ने दोने को बन्द किया और घर को चल पड़ी।

विद्या की छत पर पसरी नीम की छाया में बैठ दोनों सहेलियों ने कमरख खाया। विद्या ने कमरख पहले भी खाए थे। पर कमरख चींटियों की गाय है, वाली बात उसे भी पता नहीं थी। उसे हैरानी हुई क्योंकि उसकी नानी की बाड़ी में कमरख का झाड़ लगा था। विद्या ने उससे ख़ूब कमरख तोड़कर खाए थे।

"लेकिन देवना ने तो..." अम्मा का वाक्य फिर हवा में झूल रहा था।

विद्या बोली, "इसका मतलब है कि चींटियाँ कमरख को गाय कहती हैं और इसके रस को दूध!"

अम्मा को एक बात सूझी। 'विद्या! चल चींटियों के बिल के पास कमरख का एक टुकड़ा रखकर देखते हैं!"

कमरख रखते ही एक-एक कर कई चींटियाँ उस पर चढ़ गईं। और उसका रस चूसने लगीं। बीच-बीच में कुछ चींटियाँ दूसरी चींटियों को बुलाने चल पड़तीं। देखते-देखते पीला-हरा, सितारा फूल कमरख चींटियों से काला हो गया।

विद्या की माँ उसे खाने के लिए आवाज़ लगा रही थीं। उनकी आवाज़ सुन अम्मा को ख़्याल आया कि उसकी अम्मा भी उसे आवाज़ लग रही होंगी।

"खाने के बाद चींटियों पर नज़र रखना..." कहते हुई अम्मा घर को दौड़ी।

शाम को मिलते ही विद्या अम्मा के कान में फुसफुसाई, "जब मैं खाना खाकर लौटी तो वहाँ न चींटियाँ थीं और न कमरख!"

अम्मा और विद्या अँधेरा घिरने तक चींटियों की दुनिया के बारे में बतियाते रहीं। बालकनी के उनके छुपे हुए कोने में उन्होंने मन ही मन चींटियों की दुनिया के चित्र बनाए, मिटाए, बनाए।

घर या पहचान के किसी बड़े से इसके बारे में पूछने की बात तक मन में न आई।

इस तरह कमरख के चींटियों की गाय होने की बात देवना, विद्या और अम्मा के अलावा आज तक किसी को नहीं पता है। दुनिया सोचती रहती है कि चींटियों में इतनी फ़ुर्ती, इतनी मेहनत का माद्दा कहाँ से आता है?

यह राज़ सिर्फ़ देवना, विद्या और अम्मा ही जानती हैं। और अब आप भी...



चिली मिली

राकेश रंजन

चित्रः वसुन्धरा अरोरा



एक चीनी प्लेन से चिली गया।

चिली में हर तरफ़ पहाड़ ही पहाड़ थे। प्लेन कहीं-कहीं था।

चीनी को खाना बनाने के लिए चिली की ज़रूरत थी। पर चिली में हर जगह चीनी बिक रही थी। चिली के बिना चीनी हंगरी था। इसलिए चिली की खोज में चीनी हंगरी चला गया। वहाँ उसे एक रूसी मिला जिसके बालों में रूसी नहीं थी। उसका नाम माइक टेलर था पर वह माइक पर नहीं बोल रहा था। और न ही वह कपड़े सिल रहा था। माइक टेलर चिली बेच रहा था। तो आख़िरकार चीनी को चिली मिली।





नीली लाइट

जियानी रोदारी
प्रस्तुतिः तज़ीन अली
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

एक बार मिलान के दुओमो रोड क्रॉसिंग पर लगी ट्रैफ़िक बत्ती के साथ कुछ यूँ हुआ कि उसकी तीनों लाइटें नीली हो गईं। लोग चकरा गए। "हम रोड क्रॉस करें या खड़े रहें?"

अपनी तीनों लाइटों से वो बत्ती सिर्फ़ नीला चमका रही थी। हर दिशा में। वो इतनी नीली थी कि मिलान ने अपने सिर पर इतना नीला आसमान इसके पहले कभी न देखा था ।

गाड़ीवालों ने खूब हॉर्न बजाए। कइयों ने अपने इंजन घर्र-घर्र किए। पैदल जाने वाले उनको घूरते हुए खड़े रहे।

फिर उस रुकी हुई भीड़ के कुछ दिमाग़ चलने लगे। "मुझे मालूम है इसको लगाने वाला ठेकेदार सारा हरा पार कर गया। ऐसे ही उसका बंगला इतना हरा थोड़े ही पुत गया होगा!"

"हाँ, और क्या पता कि सारा लाल फ़ायर एम्बुलेंस पर चढ़ा दिए होंगे।"

"और, तुम्हें पता है पीला किधर गया? आजकल जैतून का तेल देख रहे हो? कुछ ज़्यादा ही पीला आने लगा है।"

आख़िरकार एक ट्रैफ़िक कर्मचारी आया। बीच क्रॉसिंग पर खुद को तैनात किया और यातायात सम्भालने में जुट गया। फिर एक आदमी अपना बक्सा लेकर आया और इससे बिजली की समस्या की तरह निपटने में लग गया। सबसे पहले उसने एहतियातन बिजली काटी।

बिजली गुल होने से ठीक पहले, नीली लाइट ने सोचाः कैसे लोग हैं यार। हम उन्हें आसमान का रास्ता खुला है, यह दिखा रहे थे। अगर वो समझ सकते तो उड़ पाते। पर होगा कोई डर...

'एक सेल्समैन था। उसको हफ़्ते में छह दिन काम के सिलसिले में बाहर जाना होता। वो बस संडे को घर रहता। सोमवार सुबह जब वो घर से निकल रहा होता तो उसकी बेटी उससे कहती, "पापा, याद है न? रोज़ रात, सोने से पहले, एक कहानी।" उसको बिना कहानी सुने नींद नहीं आती थी। तो हर रात, वह सेल्समैन उसको फ़ोन करके कहानी सुनाता था।'

जियानी रोदारी (1920 -1980) इटली के उस्ताद बाल साहित्यकार थे। उन्होंने न सिर्फ़ बच्चों के लिए लिखा पर उनकी शिक्षा और परवरिश को सरसता से बरतने पर भी काफ़ी काम किया और लिखा। उनकी लिखे क़िस्से-कहानियों के अनुवादों को तुम अब ताज़े चित्रों के साथ पढ़ सकते हो। यह कहानी उनकी किताब 'टेलीफ़ोन टेल्स' से साभार। इसे छापा है एंचान्टेड लायन ने।

मैं तो नया हूँ

उमेश विनायक कुलकर्णी
मराठी से अनुवादः निशिकान्त ठकार
चित्रः तापोशी घोषाल

ट्रेन निकल पड़ी और मुझे पक्का भरोसा हो गया कि मैं अब सचमुच ही बड़ौदा जा रहा हूँ। मैं पहली बार ही मामा के पास जाने वाला था। तीन वर्ष पहले ही तय हो गया था कि छुट्टियों में बड़ौदा जाना है लेकिन कोविड बराबर परीक्षा के पहले ही निकला। इससे परीक्षा और बड़ौदा दोनों डूब गए।

मैं मन ही मन प्रार्थना कर रहा था कि कम से कम इस बार तो कोई नई बीमारी मेरे मामा के पास पहुँचने से पहले न आए। मामा का मकान बड़ौदा में है और बड़ौदा महाराष्ट्र के बाहर। मैं महाराष्ट्र के बाहर कभी नहीं गया था। एक-दो बार ट्रेक के लिए सिंहगढ़ और राजगढ़ गया था और एक बार साँगली, फूफी के पास। बस इतना ही। स्कूल फिर से शुरू हो जाने पर मुझे शाल्व और मल्हार को बताना था कि मैं इस वर्ष छुट्टियों में महाराष्ट्र के बाहर गया हुआ था। इसीलिए बड़ौदा जाना मेरे लिए बेहद ज़रूरी था। फिर माँ ने यह भी बताया था कि सारिका दीदी ने नया फ़ोन लिया हुआ है।

वहाँ जाने पर माँ और मामी कुछ मनौती मनाने के लिए चार दिन दूर के पहाड़ी मन्दिर जाने वाली थीं। तब मैं अकेला ही मामा के पास रहने वाला था। तब मैंने चुपचाप तय किया था कि दीदी के मोबाइल में होने वाले गेम्स जी भर के खेलूँगा। मैंने माँ से बार-बार शिकायत की थी कि मेरी चप्पलें मुझे बहुत तंग हो रही हैं। तो जाने से पहले मेरे लिए नए शूज़ ख़रीदे गए।

अपने पैरों को हिलाते-डुलाते मैं सफ़ेद केनवास के शूज़ को एक-एक कर देख रहा था। ट्रेन के इस डिब्बे में इतनी सफ़ेद और नई दूसरी कोई चीज़ आसपास नज़र नहीं आ रही थी।

मेरे पड़ोस में एक पति-पत्नी बैठे थे। वे इतने बूढ़े भी नहीं थे कि उन्हें दादा-दादी कहा जाए। न जगू काका जैसे जवान थे कि उन्हें चाचा-चाची कहा जाए। इसलिए मेरे सामने सवाल था कि उन्हें क्या कहा जाए? वह सिर्फ़ पति-पत्नी ही थे। दोनों लगातार बातें करते जा रहे थे और खाते जा रहे थे। खाने के लिए वह एक बड़ा जामुनी थैला ही भर लाए थे। हर कुछ देर बाद पति कुछ माँगता था। वो देर तक कुछ नहीं माँगे तो पत्नी स्वयं ही कोई पुड़िया बाहर निकालती थी। वह पति-पत्नी बड़े अच्छे निकले। हर बार खाने से पहले मुझे और दूसरे लोगों से लेने का अनुरोध करते। माँ को भाँपते हुए शुरू में मैंने उनसे खाखरा और रामदाने का लड्डू ले लिया और खा गया। लेकिन तीसरी बार जब उन्होंने थैले से पापड़ी निकाली तब माँ ने ज़रूर मेरी तरफ़ कुछ अलग नज़र से देखा। इसलिए पापड़ी को मैंने 'नहीं' कहा। दरअसल पापड़ी मुझे बहुत अच्छी लगती है। मुझे बार-बार लगता रहा कि खाखरा और लड्डू को पहले नहीं कहता तो पापड़ी ले सकता था। वह पति बार-बार 'फाफड़ा लो नी! फाफड़ा लो नी' कहते हुए



पुड़िया मेरे सामने नचा रहा था। तब मुझे पता चला कि पापड़ी को गुजराती में फाफड़ा कहते हैं। मैं फाफड़ा सुन मन ही मन हँस पड़ा।

खिड़की के पास सफ़ेद कपड़े पहने दाढ़ी वाले एक साधु महाराज बैठे हुए थे, गंजी खोपड़ी वाले। मैं बार-बार खिड़की के बाहर देखने का बहाना करते हुए उनकी चाँद देख रहा था। इतनी चिकनी चाँद हमारे घर, बिल्डिंग या सोसाइटी में किसी की भी नहीं थी।

उस चाँद वाले साधु महाराज ने खाने की किसी भी चीज़ को स्वीकार नहीं किया। इतना ही नहीं, उन चीज़ों की ओर से मुँह भी फेर लिया। देखते तो क्या उन्हें खाने की चाह हो जाती? पता नहीं। साधु महाराज या तो खिड़की के बाहर देखते या आँखें मूँदकर बैठते। सहसा उनके बदन से किसी मंत्र की आवाज़ आने लगी। उन्होंने अपने झोले से आई फ़ोन बाहर निकाला और काफ़ी धीमी आवाज़ में कुछ बोले। फिर उन्होंने फ़ोन बन्द करके झोले में रख लिया। उनका फ़ोन आया तो हमारे छह लोगों के कक्ष में सबने सहसा बोलना बन्द कर दिया। मेरी समझ में आ गया कि साधुजी का फ़ोन बाक़ी लोगों के फ़ोन से ज़्यादा ज़रूरी होता है।

मेरे बगल में एक दादा बैठा हुआ था। वो जब से ट्रेन में आया, तब से हेडफ़ोन लगाकर बैठा हुआ था। बीच-बीच में वह डोल रहा था। शायद वह कुछ अलग ही गाने सुन रहा था। बगल में होने से मुझे भी वह गाना कुछ थोड़ा सुनाई दे रहा था। लग रहा था कि गाने के ठेके उसके ही बदन से निकल रहे हैं। वह जो गाना सुन रहा था, मैं उसी गाने को ठीक से सुनना चाहता था। समझ में नहीं आ रहा था कि उससे कैसे पूछें। और कुछ डर भी लग रहा था। पूछना चाहता था

कि कौन-सी भाषा में है? मराठी, हिन्दी या अंग्रेज़ी? अंग्रेज़ी में पूछने पर क्या उसे सुनाई देगा? मैं मन ही मन अंग्रेज़ी बोल जोड़ने लगा।

पता नहीं कैसे उसे मेरे मन की बात समझ में आ गई। मुस्कराकर उसने मेरी तरफ़ देखा और थोड़ी देर के लिए हेडफ़ोन मेरे कान पर लगा दिया। वह किसी अजीब-सी नई भाषा में था। अच्छा था। मैंने भी उसकी लय पर डोलकर देखा। बिना बोले भी कुछ बातें दूसरे आदमी तक पहुँचती तो हैं। लेकिन यह कैसे क्या होता होगा?

गाड़ी स्टेशन पहुँच रही थी। तब मेरी नई घड़ी में चार बजे थे। हमें लेने मामा स्टेशन पर आया हुआ था। माँ को वह खिड़की से दिखाई दिया। वह छोटी बच्ची की तरह चिल्लाई, 'दादाऽऽ'। मैं उसकी तरफ़ अचरज से देखता रह गया।

हम रिक्शा से चल पड़े। मैं बाहर नहीं, मामा की तरफ़ ही देखना चाहता था। मैंने उसे बहुत पहले देखा था। अब बड़ा हो जाने पर पहली बार उसे देख रहा था। उसकी ओर देखकर मुझे कुछ अजीब-सा लग रहा था। वह ऐसा लग रहा था जैसे माँ अगर मर्द होती और उसकी दाढ़ी मूँछें होती तो वह दिखाई देती। मैं रिक्शा में उन दोनों के बीच बैठा हुआ था। मुझे एक बार मामा की तरफ़ तो एक बार माँ की तरफ़ देखना पड़ता था। मेरी गर्दन दुखाई देने पर मैं सामने बड़ौदा को देखने लगा। मैं पहली बार ही बड़ौदा देख रहा था। और बड़ौदा भी पहली बार मुझे देख रहा था।

मामा का मकान बड़ौदा की एक पुरानी बस्ती में था। एक छोटी-सी गली और उसके दोनों तरफ़ मकान। बहुत-से एक मंज़िले पर कुछ दो मंज़िले भी थे। सब घरों के बाहर छोटे-छोटे चबूतरे बने हुए थे। उन पर कुछ लोग बातें हाँकते हुए बैठे थे। माँ बार-बार मुझे कहती है कि बातें हाँकते हुए मत बैठना। लेकिन मुझे आज तक समझ ही नहीं आया कि भेड़-बकरियों, गाय-बैलों की तरह बातों को कैसे हाँका जाता है।

मामा का मकान चार कमरों वाला था। न बहुत बड़ा, न बहुत छोटा। मैंने मकान में कदम रखा और दंग रह गया। आज तक मैंने जितने भी मकानों को देखा यह उन सबसे न्यारा था। मकान की चारों दीवारों में आले बने हुए थे। जहाँ आले नहीं थे वहाँ तख्तियाँ बिठाई गई थीं। पूरी छत तक। उन सभी तख्तियों पर अनगिनत चीज़ें रखी हुई थीं। मानो दीवार थी ही नहीं। दीवार उन चीज़ों के पीछे छिप गई थी। बीच-बीच में ज़रा-सी दिखाई दे रही थी। उनका रंग फीका-नीला है, यह कुछ देर से ही समझ में आ सका। मुझे लगा कि मैं किसी दुकान में आ गया हूँ। लेकिन था तो मकान ही। वहाँ सारी चीज़ें पुरानी थीं। गागरे, कलसी, पुराने देहारे, रंगीन काँच का ताजमहल, लकड़ी के खिलौने, पालने, तिपाइयाँ, पत्थर, मिट्टी, ताँबा-पीतल के बर्तन, पुरानी मूर्तियाँ, पुराने कैलेण्डर, फूलदानियाँ वग़ैरह।

मकान में जाते ही मैं कुछ घबरा-सा गया। नया कुछ भी देखने पर और कुछ हो न हो, पहली बार जी घबराता क्यों है?

ज़मीन पर नक़्क़ाशी की फ़र्श थी और उसमें तरह-तरह के तिकोने आकार थे। कुछ आकारों को एक साथ देखने पर एक अलग ही नक़्क़ाशी बन जाती थी। कुछ चीज़ें छत पर टँगी हुई थीं। दो झाड़फानूस, एक आकाश दिया, काँच की शानदार हाँडी जिसमें पूरा कमरा छोटा होकर दिख रहा था। ऊपर एक तख्ती पर चौकौन काँच के बक्से में मदर मेरी और ईसा की मूर्ति रखी हुई थी। उसके पड़ोस में

बाँसुरी बजाने वाले कृष्ण की मूर्ति थी। उनके हाथ में बाँसुरी नहीं थी। पास के आले में मिट्टी की गुड़िया थी। हाथ लगाने पर उसकी गर्दन, लहँगा, पैर, सब कुछ हिलने लगता था। मैंने उसे हिलाकर देखा।

रसोई घर में मामी और सारिका दीदी ज़मीन पर बैठकर चकलियाँ बना रही थीं। मामी ने सारिका दीदी से कहा कि मुझे चकली दे दे। चकली इतनी गर्म थी कि मैं गेंद की तरह इस हाथ से उस हाथ में उछालते हुए एक-एक टुकड़ा तोड़कर मुँह में डालता गया। चकली बहुत बढ़िया बन गई थी। मुँह में डालते ही घुल गई।

जैसा कि माँ ने कहा था, नहा-धोकर मैं नाना जी के कमरे में उनके पाँव छूने गया। नाना जी का कमरा अँधेरा था। खपरैल की छत से आया धूप का एक टुकड़ा नाना जी की खटिया के पास पड़ा हुआ था। कमरे में चैतही की पुरानी गन्ध थी। नाना जी शान्ति से सोए हुए थे। उनकी आँखें खुली थीं। कान उनके काफ़ी बड़े थे। सारे बदन की तरह उनके पैरों पर भी झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। मैंने माँ से पूछा, "यह बोलते क्यों नहीं?" तो उसने बताया कि उन्होंने मौन अपनाया हुआ है। मैंने उनकी, और फिर माँ की तरफ़ असमंजस से देखा।

"मतलब अब आप कभी भी किसी भी शब्द का उच्चार नहीं करेंगे? क्यों?"

"क्योंकि जो बोलना था वो सब बोल चुके हैं।"

जिनका सारा बोलना बोला जा चुका था, ऐसे नाना जी की तरफ़ मैं ध्यान से देखने लगा।

पीछे से माँ मुझे इशारे से समझा रही थी कि पूछो, आप कैसे हैं। बताओ उन्हें कि तुम कौन हो। मामा के पास आने से पहले ही उसने मुझे कई बातें समझाई थीं। "मामा के पास किसी तरह ज़िद नहीं करना। वहाँ किसी से भी नहीं कहना कि पिताजी की नौकरी चली गई है। थाली में कुछ भी जूठन नहीं छोड़ना।" और ऐसे ढेर सारे आदेश। यदि कोई उसे कहे कि बिना आदेश के बोलो तो वह क्या बोलेगी? शायद उसे भी मौन में जाना पड़ेगा।

मैंने नाना जी के पाँव छू लिए। उन्होंने हलके से अपना हाथ मेरे मुँह पर फेरा। उनका हाथ इतना मुलायम था...लगा कि मेरे चेहरे पर मक्खन फैल रहा है।

सबके बिस्तर बाहर के कमरे में बिछे हुए थे। मैं रात में माँ के पास सोया हुआ था। माँ बताने लगी कि मनौती माँगने के लिए जाने पर यहाँ मुझे क्या-क्या करना है और क्या-क्या नहीं करना है। एक-एक आदेश को मैंने कम से कम तीन बार तो सुना होगाः "हर दिन नहाना, अपनी चड्डी धोकर सुखाना, सारिका दीदी को रसाई में मदद करना..." ऐसे ढेर सारे आदेश उसके दिमाग़ से लगातार निकल रहे थे।

मेरा सारा ध्यान तख़्तियों पर रखी चीज़ों की तरफ़ था। उनकी तरह-तरह की परछाइयाँ एक-दूसरे पर पड़ी हुई थीं। सहसा, वह परछाइयाँ हिलने लगीं। लकड़ी के जिराफ़ की परछाई धीरे-धीरे बड़ी होती गई और चलने लगी। डोलने वाली गुड़िया जिराफ़ की पीठ पर जा बैठी और जिराफ़ ताजमहल की परछाई को निगल गया। पेट में ताजमहल लेकर जिराफ़ ने गंगा के पानी में छलाँग मार दी और दादा के हेडफ़ोन का गाना शुरू हो गया। पानी के भीतर सारी परछाइयाँ रंगीन हो गईं। मिट्टी की परकोनी मछलियाँ ज़िन्दा होकर पानी में तैरने लगीं। इतने में मछलियों के सामने टप्प से एक फाफड़ा टपक पड़ा और मछलियाँ उस पर झपट पड़ीं। फाफड़ा यहाँ कहाँ से आ गया देखने के लिए मैंने ऊपर देखा तो सफ़ेद



लिबास के साधु महाराज फाफड़ा खा रहे थे। उन्होंने मुझसे भी पूछा कि क्या फाफड़ा खाओगे? उनसे फाफड़े को लेना कि नहीं लेना, मैं इसी उलझन में पड़ा हुआ था। तभी उनकी चाँद पर रोशनी का एक हलका-सा टुकड़ा सरकता दिखा। वहाँ मुझे कुछ हलचल नज़र आई। शाल्व और मल्हार उस चिकने चाँद पर स्केटिंग कर रहे थे। कहीं सहसा फिसलकर गिर तो नहीं जाएँगे, यह सोचकर मैं पुकारता हुआ उनके पीछे भागने लगा। लेकिन मेरे मुँह से शब्द ही नहीं निकल रहा था। बाप रे! क्या मैं भी मौन में तो





नहीं चला गया? मैं डर गया। मुझे मौन-फौन में बिलकुल ही नहीं जाना था। मेरा सारा बोलना अभी कहाँ बोला जा चुका था। मुझे अपनी बड़ौदा ट्रिप के बारे में शाल्व और मल्हार को बताना था। मैं बोलने की कोशिश करने लगा। इतने में उधर से टीसी की आवाज़ आई, "सावर्डेकर छे?"

मैं जाग पड़ा। कोई दरवाज़े की साँकल खटखटा रहा था। मैंने आँखें मलते हुए उसकी तरफ़ देखा। फिर आसपास देखा। बाक़ी सारे बिस्तर समेटकर कोने में रखे हुए थे और कमरे में मैं अकेला था। जैसा कि तय हुआ था माँ और मामी मेरे जाग जाने से पहले ही चली गई थीं। मैं कुछ भी न समझने जैसी हालत में, दरवाज़े पर खड़े आदमी की तरफ़ यूँही देखता रहा। उसने फिर से पूछा, "सावर्डेकर छे?" तब मेरी ट्यूब जल उठी और मैंने झट से उनसे कहा, "हाँ, हाँ, छे, छे।" मैंने ऐसा कहा मतलब मेरे मुँह से शब्द निकल पड़े। इसका मतलब यह हुआ कि मैं मौन में नहीं गया। मुझे इतनी खुशी हुई कि मन उछलकूद करने का होने लगा। इतने में भीतर के कमरे से मामा आ गया और आए हुए मेहमान से गुजराती में बात करने लगा। मैं तुरन्त भीतर भाग गया।

सुबह से तरह-तरह के लोग मामा के पास आने लगे। वे सब इन पुरानी चीज़ों को देखने या उन्हें ख़रीदने आ रहे थे। शुरू में मुझे इन लोगों पर हँसी आ रही थी। हर चीज़ को वे बारीक़ी से परखकर देखते थे। फिर मैं भी उन लोगों को परखकर देखने लगा। वे लोग मामा से काफ़ी सवाल पूछते थे। कोई चीज़ कितनी पुरानी है? मामा को वह कहाँ मिली? मामा भी उन्हें सब कुछ बता रहा था। उनकी बातों से मुझे भी काफ़ी नई बातों की जानकारी हो रही थी।

वैसे यह मामा का मुख्य कारोबार नहीं है। नाना जी को पुरानी चीज़ें इकट्ठी करने का शौक़ था। जब घर में खाने की चीज़ें नहीं होतीं तो भी वे कभी पैदल, कभी बैलगाड़ी या ट्रेन से जाकर उन चीज़ों को ख़रीदकर लाते। पहले चीज़ें हाथ से बनती थीं। अब वैसी चीज़ें कोई नहीं बना सकता। मशीन में वह कला नहीं होती जो एक आदमी के हाथ में होती है। कुछ चीज़ें तो नाना जी को कूड़े या भंगार में फेंकी हुई भी मिल गईं।

मामा बचपन से ही उनके साथ जाया करता था। फिर मामा पर भी वह शौक़ सवार हो गया। दूसरी कोई जगह न होने से उन्होंने चीज़ों को घर पर ही सम्भालना शुरू किया। लोग आते और अपनी-अपनी पसन्द की चीज़ ले जाते। कोई चीज़ कितनी क़ीमती है यह उसके पुरानेपन से तय होता। चीज़ जितनी पुरानी, उतनी महत्व की और महँगी। लेकिन मामा सभी चीज़ों को बेचता नहीं था। क्योंकि उसने हर एक चीज़ को बड़ी मशक्कत करके जुटाया था। हर चीज़ के पीछे एक कहानी होती थी। कुछ ख़ास चीज़ें ऊपर

के कमरे में रखी हुई हैं, लेकिन वे सब के लिए नहीं हैं। ख़ास जानकारों को ही दिखाई जाती हैं।

शाम को एक महिला आईं। उसके बाल नीले थे। वो हर चीज़ को बड़ी बारीक़ी से देख रही थीं। उनके साथ आई दीदी को उन चीज़ों के नाम, उनका समय, कौन-सा बरतन कितना पुराना है, कौन-से राजा का है, उनमें कौन-से व्यंजन पकाए जाते हैं...जैसी अजीबोगरीब बातें बता रही थीं। वो जो बता रही थीं उनमें से आधी से ज़्यादा बातें तो मेरी समझ के बाहर की थीं।

उन्होंने पैरों को छूने वाली लम्बी स्कर्ट पहनी हुई थी। उस पर तरह-तरह के आकारों की खोपड़ियाँ लटक रही थीं। उनकी हलचल से खोपड़ियाँ भी हिलती थीं और एक-दूसरे से टकराती थीं। कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि ये खोपड़ियाँ एक-दूसरे को चूम रही हैं। शायद वो महिला मामा के पास अकसर आती होंगी। मामा ने सारिका दीदी को उनके लिए चाय बनाने को कह दिया था।

दीदी की मदद करने के लिए मैं रसोई में उसके साथ चला आया। उबलते हुए पानी में उठ रहे बुलबुलों को देखता रहा। उसमें चाय की पत्ती डालने पर पानी भूरा-सा चॉकलेटी बन गया। इतने में वह महिला खुद ही रसोई में आ गईं और तख़्ती पर रखी चीज़ों को देखने लगीं। उन्होंने एक लोटा हाथ में लिया और उसे घुमा-फिराकर देखने लगीं। सारिका दीदी ने मुस्कराते हुए उनसे कहा "यह तो घर के काम का है।" वो भी मुस्कराईं और बोलीं, "आपके पास इतनी बढ़िया चीज़ें हैं कि मन करता है यहीं रहने आ जाऊँ। आप कितने लकी हैं।"

"बाप रे! तो क्या ये यहाँ रहने के लिए आने वाली हैं? फिर ये सोएँगी कहाँ?" मैं डरने लगा। मैं और सारिका दीदी बाहर के कमरे में सोते हैं। वे अगर बाहर के कमरे में सोने के लिए आएँगी तो मुझे तो नाना जी के कमरे में जाना पड़ेगा। और वहाँ जो अँधेरा है उससे मुझे बहुत डर लगता है। मेरे मन में इस तरह की बातें उठ रही थीं। तभी साँस लेते हुए जैसे मामा का गोल पेट फूल उठता है, वैसे ही चाय फस्स की आवाज़ के साथ अचानक ऊपर आई और गिरने ही वाली थी कि सारिका दीदी ने गैस बन्द कर दी। दीदी ने चिमटे से बर्तन उठाकर चाय को छान लिया। उस महिला ने चिमटे की भी तारीफ़ की।

जाते वक़्त उन्होंने मामा से डेढ़-सौ वर्ष पुराना एक इत्रदान खरीदा। वह मोर के आकार का था और मोर का पेट इत्र रखने की जगह थी। मुझे लगा कि इन्होंने हर खोपड़ी को इत्र लगाने की सोची तो इतना इत्र काफ़ी नहीं होगा। उन्होंने मामा की बताई रकम चुकाने के लिए पर्स निकाला तो उसमें उन्हें चॉकलेट मिल गया जो उन्होंने मुझे दे दिया। मुझे वो बहुत अच्छी लगीं। इसलिए नहीं कि उन्होंने मुझे चॉकलेट दिया। बल्कि इसलिए कि उन्होंने मुझसे ये दो सवाल नहीं पूछे - कौन से स्कूल जाते हो? कौन-सी कक्षा में हो? उस दिन मैंने चार बार इन सवालों के जवाब दे दिए थे। मुझे वह अच्छी लगी इसका दूसरा कारण यह था कि जैसा कि उन्होंने कहा था, वैसे वह घर पर रहने के लिए रुकी नहीं। रात में मैंने सारिका दीदी के फ़ोन पर, 'फ्री फ़ायर' और 'क्लैश ऑफ क्लैन्स' नाम के दो नए गेम्स डाउनलोड कर दिए। खेलते-खेलते मुझे नींद आने लगी और मन में सवाल उठने लगे।

(शेष भाग पेज 50 पर)



पापा होते तो...

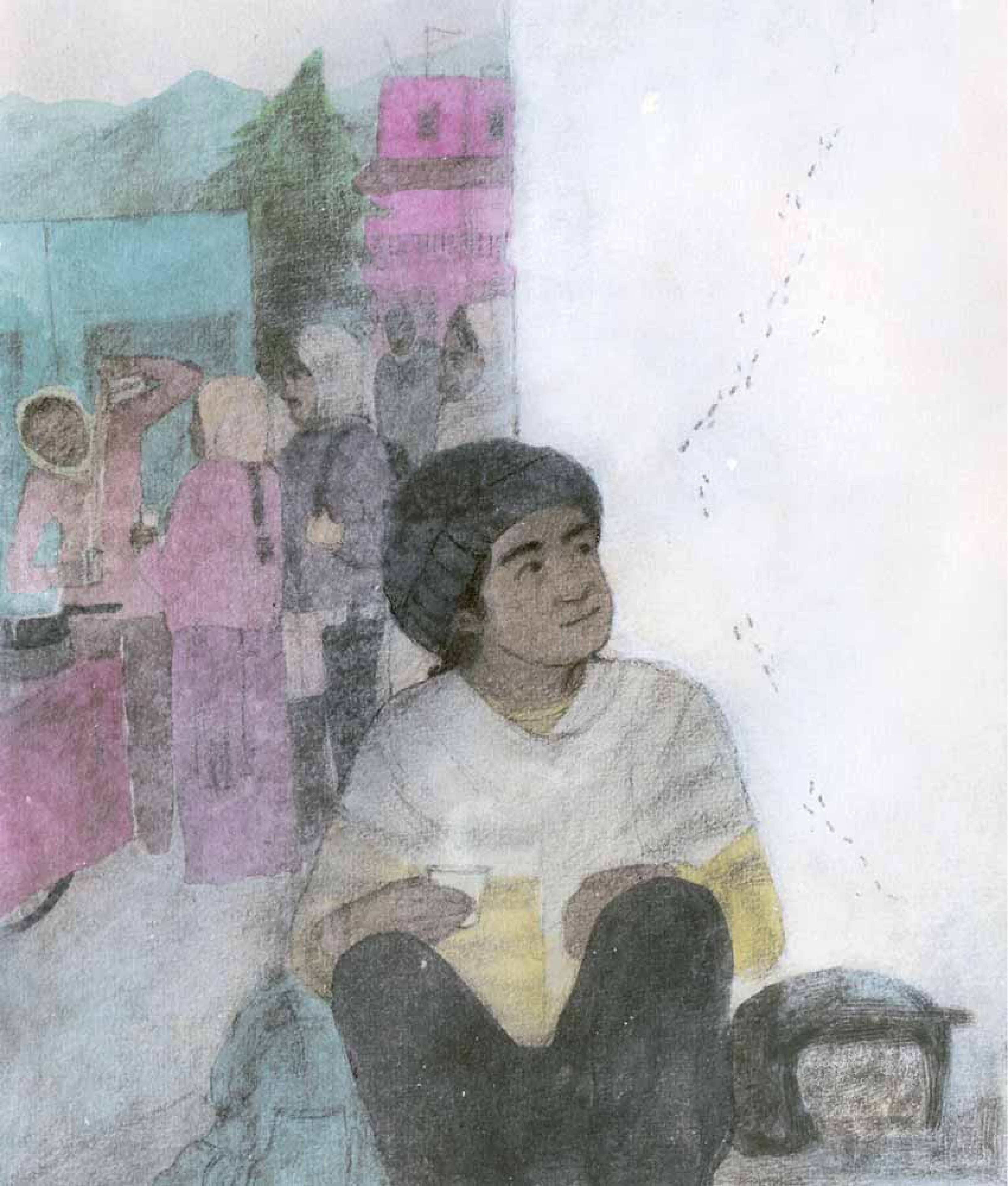
चित्र व कहानीः श्रुति हेमाणी
अनुवादः शशि सबलोक



मेरे पास पापा के साथ गुज़ारे समय की कोई यादें नहीं हैं। बस, इन यादों की ख़ाली जगहें हैं और धुँधली-सी छायाएँ हैं जिनसे ये जगहें भरी जा सकती हैं। मैं सोचती हूँ अगर हम दोनों साथ समय गुज़ार पाते तो वो कैसा होता। हम किस बात पर हँसते, क्या बातें करते। उनके साथ घर के रोज़-दिन के काम करना कैसा होता। वो मुझे कौन-सी कहानियाँ सुनाते। कैसी हिदायतें देते। उनके साथ रहते हुए मैं कैसी इंसान बनती। उनके साथ रहते हुए उन्हें जानने का मौका नहीं मिला, फिर भी लगता है उन्हें जानती हूँ। उनसे जुड़ा पाती हूँ खुद को। कुछ जो उनमें था, मुझमें भी है। मेरे बेटे में भी है। और यूँ आगे की पीढ़ियों में जाता रहेगा। वो क्या है, यह मुझे ठीक-ठीक पता नहीं है।

आज 3 नवम्बर 2024 है। पापा होते तो अस्सी के हो गए होते। आज मैं उनके होने को सेलिब्रेट कर रही हूँ। सिर्फ़ उन्हें याद करते हुए नहीं। वो जिस भी तरह से मेरे भीतर हैं, उसे गले लगाकर। यह एक ऐसा जुड़ाव है जो समय से बँधा नहीं है। और न उन क्षणों से बुना है जो हम साथ जी सकते थे। इस जुड़ाव की जड़ें इस सब से ज़्यादा गहरी हैं। अपने तरीक़े से मैं इसे अपने भीतर ज़िन्दा रखे हुए हूँ।





जो सबसे पहले मिले

संजय शेफ़र्ड
चित्रः बरखा लोहिया

दादी कहती थी कि घर से निकलने के बाद सबसे पहले तुम्हारी जिस जानवर से भेंट होगी, उसके बारे में ज़रूर लिखना। तो हर यात्रा से लौटकर मैं चींटियों के बारे में लिखता। दादी यह पढ़ती और खूब हँसती। उसकी धँसी हुई आँखें उस हँसी के साथ अकसर चमक उठतीं। मुझे उनकी आँखों में चमक देखना अच्छा लगता। वह कहती कि तुम्हें इतने लम्बे सफ़र में चींटियों के अलावा कोई और जानवर नहीं मिलता? मैं 'नहीं' में सिर हिलाता। दादी की हँसी और तेज़ हो जाती।

चींटियों के बारे में मैंने बहुत जाना। बहुत पढ़ा। समझ में यही आया कि वे यक़ीनन मेरी दोस्त हैं। मैं जहाँ भी जाता हूँ, वे वहाँ होती हैं। एक रात दादी सो रही थी। और मैं हमेशा की तरह लगभग उनके पेट में घुसकर सो रहा था। मैंने उनसे पूछा, "दादी, चींटियों को कैसे पता कि मैं कहाँ हूँ? अगर मैं पाताल भी चला जाऊँ, वे पीछा करती वहाँ भी चली आएँगी?"

दादी खूब हँसी। देर तक हँसती रही। और उनकी आँखों में फिर वही चमक भर गई। कुछ देर बाद बोली, "चींटियाँ तुम्हारी दोस्त हैं। तुम जहाँ जाओगे, ये तुम्हें वहीं मिलेंगी।"

मैंने कहा, "न मिलीं तो?"

"उन्हें ढूँढना तुम्हारी ज़िम्मेदारी।" दादी बोली।

"तुम्हारी यात्रा दो दिन की हो या दो साल की, तुम्हारा पहला काम चींटियों के घर ढूँढना है। तभी तुम्हारी यात्रा पूरी होगी।"

यह बात तब समझ में नहीं आई। बरसों बाद जब दादी नहीं रही तो दादी को याद कर बहुत रोया। एक दिन मैं घर से निकला। सबसे पहले बाग़ में जाकर चींटियों से मिला। परिन्दों के घर देखे। तितलियों से मिला। यात्राएँ मुझे खुशी देती हैं। देस-विदेश, हर जगह घूमा। हर यात्रा में दादी को साथ पाया। अब भी जहाँ जाता हूँ, सबसे पहले चींटियों के घर तलाशता हूँ। चींटियाँ जो बचपन से मेरी दोस्त हो गई थीं। जो मेरे साथ-साथ चलती थीं। शायद चींटियाँ हमारे पूर्वजों की पहली वारिस हैं।

झूला

शशि सबलोक
चित्रः तापोशी घोषाल



वह जब भी मिलता है, आपका इन्तज़ार करता मिलता है। आप उस पर बैठ जाते हैं। आपके पैर ज़मीन को छूकर तसल्ली पाए रहते हैं। हाथ रस्सियों पर कस जाते हैं। उस पर बैठे रहने की इच्छा पैदा हो जाती है।

उड़ान शुरू करने के लिए पहले झूले पर बैठे-बैठे उसे इतना पीछे ले जाते हैं जहाँ बस आपके पंजे की नोंक ही ज़मीन को छू पा सकती है। ज़मीन पर पंजों से धक्का मारने के बाद आगे की तरफ़ उड़ान शुरू होती है। तब आपकी टाँगें हवा में गोते खाने सामने की तरफ़ फैल जाती हैं। टाँगें, पीठ और बाँहें तन जाती हैं। आपका पूरा शरीर झूले को ऊपर और ऊपर ले जाने के लिए तैयार हो जाता है।

इस उड़ान के साथ आपको सामने खुला फैला आसमान दिखता है। आप ऊपर और ऊपर होते जाते हैं। हलके होते जाते हैं। हवाएँ तेज़ी-से आपके चेहरे को छूकर पीछे दौड़ जाती हैं। आपके बाल, चोटियों, कपड़ों, झूलती चुन्नियों को साथ लिए जाती हैं। एक उछाल पाते हैं आप अपने भीतर। पर आसमान में होकर भी आप ज़मीन से बँधे रहते हैं। एक सुरक्षित दूरी पर पहुँचकर आप लौटते हैं। लौट आने के लिए नहीं। लौटने की जगह पर नहीं। तने पाँवों को मोड़ कर पीछे लाते हैं। फिर दम लगाकर हवा में ऐसे तानते हैं कि उछल कर फिर उन्हीं ऊँचाइयों पर पहुँच जाते हैं।

हर उड़ान में आप दो बार ज़मीन से दूर जाते हैं मगर हर उड़ान में आप दो बार आसमान के करीब आते हैं। एक पेंग में जो ज़मीन नीचे तेज़ी से छूटती है, वही लौटते हुए वसूल ली जाती है। एक जाना-पहचाना रास्ता आता-जाता रहता है।

यह आवाजाही देर तक बनी रहती है। इस आने-जाने में रास्ते और साफ़ होने लगते हैं। आपमें एक यक़ीन पैदा करते हैं।

हवा में आप देर तक रह नहीं सकते। आपको ज़मीन पर लौटना ही होता है। आप हौले से पाँव ज़मीन से छुआते जाते हैं। तसल्ली पाते हैं। ज़मीन की जिस छुअन से आपने हवा में जाने की उछाल पाई थी, वही छुअन आपको लिवाने भी आती है।

झूला रुकता उसी जगह पर है जहाँ आप उस पर बैठे थे। पर आप उतरते वहीं नहीं हैं।





पानी बरसा

नवीन सागर

चित्रः एलन शॉ

हवा तेज़ बह चली सरासर
धीरे बहना भूल के
उड़े बगुले धूल के।

ज़ोर ज़ोर से लगे डोलने
पेड़ हवा से बोलने
उड़ी धूप छायाएँ लेकर
दसों दिशाएँ खोलने
जो भी निकला बाहर उसको
लगे थपेड़े फूल के।

टन टन टन टन घण्टी बाजी
गेट खुले स्कूल के
खाली झूले रहे झूलते
बच्चे भग गए झूल के।

सूरज को अँधेरा लग गया है

अलीज़ा तौसीफ़ ख़ान, दूसरी, मुम्बई



सूरज डूब रहा है। वो ब्लैक हो गया है। उसमें अँधेरा लग गया है। अगर मैं और अहद बाबू डार्क में जाएँगे तो हम भी ब्लैक होंगे। अँधेरा होने से पेड़ भी ब्लैक हो जाते हैं। मेरी पेंटिंग में वो अभी ब्लैक नहीं हुए हैं।

पहले सूरज ब्राइट ऑरेंज था। लेकिन मैंने वो पेंटिंग में नहीं बनाया।

मेरे पार्क में पेड़ों के पीछे से अँधेरा आता है। पहले वो पेड़ के पीछे आता है फिर सब जगह। आजकल पार्क के जंगल में पीली पत्तियों की बाढ़ आई हुई है। क्योंकि वहाँ हवा बहुत चलती है।



(पेज 41 का शेष)

मैं तो नया हूँ

नाना जी पुरानी चीज़ों को क्यों इकट्ठा करते होंगे? पुरानी चप्पलें तो मैंने तुरन्त कूड़ेदान के पास रख दी। मुझे तो नई चीज़ें ख़रीदने पर खुशी होती है। जैसे कि ये नए केनवास के शूज़ या फिर हर साल स्कूल की नई किताबें, नया स्कूल बैग...मुझे तो ऐसे ही सब कुछ नया अच्छा लगता है। फिर यह सारे लोग कहाँ से आते हैं जिन्हें पुरानी चीज़ें पसन्द आती हैं! और कोई दूसरे होते तो कोई बात नहीं। लेकिन यहाँ देखो तो मेरा मामा और मेरे नाना जी! लेकिन मेरी माँ तो मामा की सगी बहन हैं, तो फिर उन्हें क्यों नहीं पुरानी चीज़ें पसन्द? माँ तो किसी चीज़ को छह महीने तक काम में नहीं लाया जाए तो किसी को दे डालती है या फेंक देती है। कहती है, घर में कबाड़ बढ़ता जाता है। हरदम कबाड़-कबाड़ करती रहती है। ऐसा तो नहीं है कि गुजरात में पुरानी चीज़ों को महत्व मिलता है और महाराष्ट्र में नई चीज़ों को? कल इसके बारे में मामा से पूछना क्या ठीक रहेगा?

दूसरे दिन मामा मुझे अपनी स्कूटर पर घुमाने-फिराने ले गया। मैंने दीदी से भी चलने के लिए कहा लेकिन नाना जी को घर पर अकेला नहीं छोड़ा जा सकता। इसलिए वह घर पर ही रुकी। जाते-जाते मामा ने मुझे बताया कि इस शहर के राजा सयाजीराव गायकवाड़ बड़े कलाप्रेमी आदमी थे। उन्होंने एक बड़ी यूनिवर्सिटी बनाई। और इस शहर को कलाओं की राजधानी बना दिया।

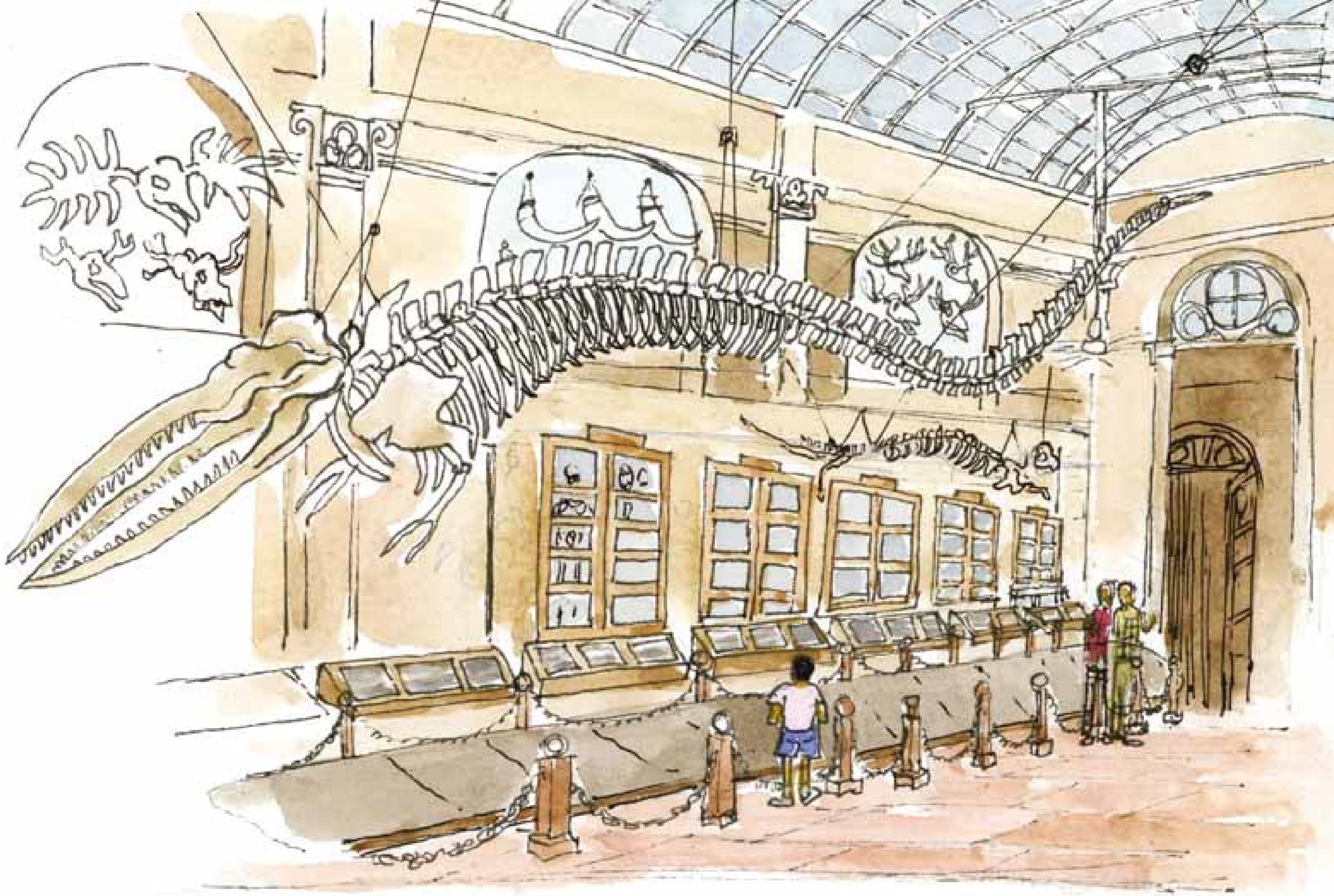
हम एक बड़े पत्थर के बने भवन के पास पहुँच गए। उस पर लिखा हुआ था, 'वस्तु संग्रहालय।' हम बग़ैर टिकट कटाए ही भीतर चले गए। वहाँ का पहरेदार मामा की तरफ़ देखकर मुस्कराया। मामा की पहचान का होगा। भीतर एक दरवाज़े के पास मुझे छोड़ते हुए मामा ने कहा, "तुम यहाँ घूमो-फिरो और देखो। मैं अपना एक काम निपटाकर आता हूँ।"

मैं डरते-डरते उस दरवाज़े से भीतर गया। वहाँ काँच की अलमारी में मामा के घर से भी कई गुना ज़्यादा चीज़ें रखी हुई थीं। एक दालान में तो बड़े-बड़े कंकाल थे। वहाँ तिमिंगल मछली का विशाल कंकाल था। उसे देखकर तो मेरे हाथ-पाँव फूल गए। उसकी तरफ़ पीठ फेरकर मैं आगे बढ़ा तो वहाँ काँच के पीछे ठुड्डी पर हाथ रखकर बैठे हुए आदमी की ठठरी थी। उसके नीचे लिखा था - थिंकरनु अस्थिपंजर।

वह ठठरी क्या कुछ सोच रही थी पता नहीं।

दूसरे एक दालान में पुरानी तलवारें, हथियार, भाले, ज़िरह-बख़्तर, और पता नहीं क्या-क्या लड़ाई का सामान रखा हुआ था। तीसरे एक कमरे में पुरानी साड़ियाँ, शॉलें, अंगरखे, काँच के अन्दर रखे हुए थे। मतलब यह कि मेरे मामा और नाना जी ने ही नहीं, यहाँ के राजाओं ने भी पुरानी चीज़ों का संग्रह बनाया हुआ है। ऐसा तो नहीं हुआ कि राजा ने तो नई ही ख़रीदी होंगी लेकिन अब पुरानी हो गईं? मैंने वहाँ लगे पंखों की गिनती करना शुरू किया लेकिन हर बार उनकी संख्या अलग ही आती गई।

जाते हुए संग्रहालय के बाग़ में मुझे असली मोर दिखाई दिया। मुझे उसके पेट को देखना था लेकिन नहीं दिखाई दिया। मामा के पूछने पर कि क्या संग्रहालय पसन्द आया, मैंने उसे हाँमी भरी। मन में सोच रहा था कि क्या अपने सवालों के बारे में मामा से



अभी पूछना ठीक रहेगा, इतने में स्कूटर इमली के एक बड़े पेड़ के नीचे खड़े ठेले के पास पहुँचा। ठेले पर एक बूढ़ी अम्मा बैठी हुई थी। सिगड़ी पर एक पुराना, काला गोल बर्तन रख हुआ था। नीचे कोयले की आग थी। ढक्कन से भाप उछल रही थी। अम्मा ने दो दोनों में पेड़ेनुमा दो छोटे गोले रख दिए। उस पर बोतल से तेल उड़ेला, थोड़ा मसाला छिड़क दिया और दोने हमें दे दिए। वह गोले इतने चटपटे थे कि मैं उन्हें झट से गटक गया।

"इन्हें लोट कहते हैं।" कहते हुए मामा ने और एक दोना मेरे लिए ले लिया।

"ये बर्तन बड़ा अच्छा है, पुराना लगता है।"

मामा ने उस अम्मा से कहा। उन्होंने कहा, "मैं पैंतीस बरसों से यह गाड़ी चला रही हूँ। तब से मुझे इस बर्तन ने साथ दिया है।"

क्या चीज़ें भी आदमी का साथ देती हैं? कौन-सी चीज़ें मेरा साथ दे रही हैं? स्कूल बैग, पेन, पेन्सिल, घड़ी, टोपी...मन में इस तरह फ़ेहरिस्त बना रहा था कि घर आ गया और पुरानी चीज़ों के बारे में मामा से पूछने की बात रह गई।

शाम को चीज़ें देखने के लिए कोई बड़ा आसामी आने वाला था। वह पहली बार ही आ रहा था इसलिए मामा से उनकी जान-पहचान नहीं थी। मामा ने बताया था कि उन्हें भी इसी तरह पुरानी चीज़ों को इकट्ठा करने का शौक़ है। वह एक नया संग्रहालय बनवाने वाले हैं। पुरातत्व विज्ञान या ऐसे ही किसी

विषय के बड़े पण्डित हैं। तो इसका भी कोई शास्त्र है। पीछे साँगली में बाढ़ आई थी। बाढ़ आने पर लोगों को बचाने का भी कोई शास्त्र होगा। मामा को शाम को किसी काम के लिए बाहर जाना पड़ा। इसलिए उन्होंने हमें ही उन्हें चीज़ें दिखाने के लिए कह दिया। शाम को जब वह पधारे तब मैं दीदी के मोबाइल में गेम्स खेलने में खो गया था। वह लम्बे थे और हैट पहने हुए थे। उनकी मूँछें इतनी बड़ी थी कि होंठ दिखाई नहीं देते थे। उनके हाथ में घड़ी थी और वह ज़रा-सा लँगड़ाते हुए चल रहे थे।

"आज मैं सिर्फ़ देखने के लिए आया हूँ।"

उन्होंने यह बात मानो कमरे से ही की। मैंने उनकी तरफ़ देखा तो सिर्फ़ एक खुरदुरी आवाज़ सुनाई दी और उनकी मूँछें ज़रा-सी हिल गईं।

वह सारी चीज़ों को बारी-बारी से देख रहे थे। बहुत बारीक़ी से। बीच-बीच में मेरी तरफ़ भी देख रहे थे। मैं अपने खेल में खोया हुआ तो था लेकिन मुझे इस बात का पता भी चल रहा था कि वह मुझे देख रहे हैं। कमर के पाउच से उन्होंने एक छोटी-सी लाल डायरी निकाली। चीज़ों को देखते हुए वो उस डायरी में कुछ लिखते जा रहे थे। कुछ चीज़ों की फ़ोटो भी ले रहे थे। बीच में सहसा उनकी नज़र मेरी तरफ़ गई। उन्होंने मेरी एक फ़ोटो खींच ली और डायरी में कुछ लिख दिया। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि फ़ोटो खिंचते वक़्त नीचे ही देखता रहूँ या उनकी तरफ़ देखूँ। या ऐसे दिखाऊँ कि मुझे पता ही नहीं चल रहा है कि वह फ़ोटो खींच रहे हैं।

इस हड़बड़ी में गेम से मेरा ध्यान उड़ गया और मैं दो बार मर गया। इसलिए मैं उनसे कुछ ख़फ़ा हो गया। उन्होंने मुझसे कोई बात नहीं की। सारिका दीदी ने उनके लिए चाय बनाई हुई थी लेकिन उन्होंने नहीं पी। उन्होंने कहा, "मैं चाय नहीं पीता।"



दरअसल मुझे तो यह देखना था कि चाय पीते वक़्त वह मूँछों का क्या करते हैं। लेकिन उन्होंने मुझे चकमा दिया। ऊपर का कमरा, जो ख़ास लोगों के देखने लिए ही खोला जाता है, मैंने उनके लिए खोल दिया। ऐसा करने को मुझे मामा ने ही बोला था। उस कमरे की खिड़कियों के काँच लाल-हरे रंग के थे। इससे उस कमरे में अजीबोगरीब रोशनी फैली हुई



थी। लगता था कि हम एक जादुई कमरे में आ गए हैं और हैट पहना हुआ यह जादूगर अपनी छड़ी को घुमाकर एक पल में मुझे ग़ायब कर देगा। इस कमरे में वैसी ही अनगिनत चीज़ें थीं। रंग-बिरंगे पत्थर, पत्थर की मूर्तियाँ जिनमें कुछ के हाथ ग़ायब थे और कुछ के सिर। बहुत सारी लकड़ी की चपटी सन्दूकें थीं। उनके ढक्कन काँच के थे और उनमें सिक्कों का संग्रह था। उन्होंने उस कमरे में काफ़ी वक़्त बिताया। कुछ बातें नोट कर ली और मुझसे कहते हुए चले गए, “कल मैं सब चीज़ें ले जाऊँगा। उनको बता देना।”

उनके जाने के बाद शाम होने लगी और मुझे सहसा डर लगने लगा। उन्होंने मेरी भी फ़ोटो खींची थी और डायरी में कुछ नोट किया था। इसका मतलब कहीं मुझे भी ख़रीदकर ले जाने का इरादा तो नहीं है। लेकिन मुझे ख़रीद लिया तो फिर मेरा क्या होगा? फिर क्या उनके संग्रहालय में वह मेरा हड्डियों का कंकाल तो नहीं रखने वाले – ‘मोबाइल गेम खेलने वाले बच्चे का कंकाल’?

वह जब आए थे तब मुझे गेम नहीं खेलना चाहिए था। लेकिन अब आगे क्या? माँ को आने में अभी दो दिन बाक़ी हैं और यह तो उनकी फ़ेहरिस्त लेकर कल ही मामा से मिलने आने वाले हैं। फिर मेरी माँ से भेंट होगी या नहीं? आने पर जब मैं नहीं दिखाई दूँगा तो वह मामा से क्या कहेगी? या फिर मामा मुझे बेचकर आने वाले रुपए उसे दे देगा? लेकिन अगर मुझे बेचने की बात पक्की है तो माँ क्या क़ीमत लगाएगी? या फिर कहीं यह माँ का ही प्लान न हो? पिताजी की नौकरी चली गई इसलिए वह चुपचाप बेचने की बात सोचकर ही मुझे यहाँ ले आई हो। क्या मेरे बिक जाने की मनौती मनाने के लिए ही माँ और मामी गईं थीं?

बिक जाना अच्छा है या बुरा? मामा ने कहा था कि सारी चीज़ें बेचने के लिए नहीं हैं। तो फिर मैं बिकने वाली चीज़ों में हूँ या न बिकने वाली चीज़ों में? नाना जी को लगता है कि मुझे बेचना नहीं चाहिए। क्या इसलिए ही उन्होंने बोलना बन्द किया है? मैं तो सिर्फ़ दस बरस पुराना हूँ। नाना जी तो मुझसे कहीं ज़्यादा पुराने हैं। उन्हें बेचना मामा के लिए ज़्यादा फ़ायदेमन्द नहीं होगा?

कल सुबह मैं नई टी-शर्ट और नए जूते पहनकर ही उनके सामने जाऊँगा। जिससे उन्हें लगेगा कि इसे ख़रीदना किसी काम का नहीं है। मेरा सिर चकराने लगा। और रात में सारा बदन दुखने लगा। सारिका दीदी ने मुझे गुलगुला भात खिला दिया और सो जाने को कहा। मुझे अच्छा नहीं लग रहा था इसलिए उन्होंने खुद ही मोबाइल गेम खोलकर मुझे दे दिया। मुझे आज इस गेम को खेलने में कोई मज़ा नहीं आने वाला था। बेचे जाने पर क्या मोबाइल गेम खेला जा सकेगा? पता नहीं। मैं दीदी को ये सारी बातें कह देना चाहता था लेकिन समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे कहूँ? बिना बोले वह कैसे समझ पाएगी कि मुझे ऐसा लग रहा है?

पता ही नहीं चला कि मुझे कब नींद आ गई। सुबह देर से उठा। मैंने देखा कल वाला आदमी पहले से ही बैठा था। टेबल पर फ़ेहरिस्त के अनुसार एक-एक चीज़ निकाली जा रही थी। मेरे उठने के बाद उन्होंने और मामा ने मेरी तरफ़ देखा। मुझे उठते-उठते ही रोना आ गया। मैं उनकी तरफ़ देखकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा और मामा के पास जाकर उनके गले लग गया। कहा, “मामा, मैं तो नया हूँ, सच्ची बहुत नया हूँ।”

बीत गया दिन
पौधे को बचाते हुए
गलत दिशा से

हिमांशु व्यास
चित्रः तापोशी घोषाल



आई ऐसी बाढ़ नदी में
गाँव बह गए तीन
प्रधानमंत्री देखते लेकिन
मिली नहीं दूरबीन

प्रभात
चित्रः तापोशी घोषाल





टुकु की डायरी

सौमित्र भट्टाचार्य
चित्रः प्रशान्त सोनी

11 मार्च 2024
मंगलवार
रात 8:30 बजे

घर्र्रर...घर्र्रर... इतनी देर तक रबरबुन चबाकर भी गुस्सा ठण्डा नहीं हुआ। इसलिए बैठे हैं डायरी लिखने के लिए। मन तो करता है डायरी लिखने की जगह डायरी लिखवाएँ। मगर किसके ऊपर गुस्सा करूँ? पीयू? सिर्फ़ लम्बी ही हुई है, बड़ी नहीं हुई। हुँह! मुझपर दीदीगिरी करती है। बोलती है, "टुकु मुझे दीदी बोलना, मैं तुमसे बड़ी हूँ!"

घर्र्रर...घर्र्रर...बड़ी ना गड़ी...हुँह!...घर्र्रर...नहीं। आज जो हुआ न वो लिखना ही चाहिए। बहुत दिन से पीयू बोल रही थी, 'डीयर पार्क जाना है, डीयर पार्क जाना है।' तो मैं ले गया। इधर-उधर घूमने के बाद मैंने सोचा उसको एक सरप्राइज़ दूँ। ऐसे ही सोच रहे थे क्या दिया जाए। उसी समय देखा एक मोरनी को। बस, मैं उसके पीछे दौड़ गया। पीछे से सुना पीयू चिल्ला रही थी, "नो टुकु, नो टुकु!" मैंने एक बार लौटकर, थोड़ा-सा दाँत निकालकर बोला, "भो, भोक्क।" माने डरपोक।

थोड़ा आगे बढ़ते ही मोरनी अचानक रुक गई। ओहो, उसके पीछे कब वो मोर आके खड़े हो गए ख़्याल ही नहीं हुआ। ये तो बहुत बदमाश मोर हैं। मुझे देख के ही वो आगे चले आए। मैं उनको बोलना चाहा, समझाने का कोशिश किया, "अरे मैं आपको काटने नहीं आया हूँ। मैं आपका एक पलक लेने आया हूँ। आपका जो पूँछ है, वो लेने के लिए आया हूँ! पीयू को दूँगा।" पर वो तो मेरी बात सुनने के लिए तैयार ही नहीं थे।

"केउऊँ!" करके मेरी तरफ़ बढ़ने लगा।

हूँहहू...मैं भी, 'ख्येउऊँ!' करके मुड़ा और लगाया दौड़।

मैं तो दौड़ रहा था, दौड़ रहा था...

मगर पीयू कहाँ?

इधर पीछे मेरे है, ये मौरा-सुर...

ओहो, मैं तब देखा पीयू आराम से झूले पर झूल रही थी। मैंने कहा, "भुक, भुक!" माने लुक लुक। पीयू के पास जैसे ही मैं पहुँचा, बस वो दौड़ लगाई। मुझे बस बोला, "टुकु रन, टुकु रन।" मैं और क्या करता, मैं भी रन-रना-रन...नेभर रिटर्न। सीधा बाड़ी, सीधा घर पहुँचा। और आके सोफ़े के नीचे। कुछ देर बाद हाँफते-हाँफते पीयू भी घर हाज़िर हुई। और उसके बाद वो माँ को बोली, "टुकु मुझे छोड़कर भाग गया। डरपोक कहीं का!"



भैया की क़मीज़

शरद कुमार वर्मा
चित्रः वसुन्धरा अरोरा

कई दिनों से चल रही बारिश के कारण मेरी स्कूल यूनिफ़ॉर्म की शर्ट सूख नहीं पाई थी। इसलिए माँ ने खूँटी पर टँगी बड़े भैया की सफ़ेद क़मीज़ पहना दी। वो मेरे नाप से बड़ी थी। मैं उसे पहन स्कूल चला गया।

उस दिन स्कूल में मुझे दिनभर अटपटा लगता रहा। प्रार्थना के दौरान मैं लाइन में सबसे पीछे खड़ा हुआ ताकि टीचर की नज़र मुझ पर कम से कम पड़े। मुझे डर लग रहा था कि वह मुझसे मेरी यूनिफ़ॉर्म के बारे में कुछ बोल-पूछ न लें। कक्षा में मेरा ध्यान ज्यामिति के सवालों की लम्बाई-चौड़ाई पर कम, अपनी क़मीज़ की लम्बाई पर ज़्यादा था। मैं अपनी सीट पर से उठना नहीं चाह रहा था। मेरी क़मीज़ डेस्क और बैग के रहते छिपी हुई थी। बार-बार उठकर चलने-फिरने से मेरी पोल खुल सकती थी। मेरे दोस्त हैरान थे कि रोज़ पूरी कक्षा में चक्कर लगानेवाला मैं, आज इतना शान्त क्यों बैठा हूँ।

कक्षा में अपनी सीट से उठने की कोई स्थिति आती तो मैं अपनी लम्बी क़मीज़ को ठीक-ठाक दिखाने के लिए तनकर चलता था। उस समय मेरा ध्यान अपने हर सहपाठी की नज़र पर रहता था। लगता कि कहीं मैं पकड़ा न जाऊँ। डर लगता कि दोस्त मेरा मज़ाक न उड़ाएँ। कि कोई कह न दे कि आज मैं बड़े भैया की क़मीज़ में बिलकुल जोकर लग रहा हूँ। लेकिन स्कूल का पूरा दिन बीत गया। ईश्वर का शुक्र है कि किसी को भी पता नहीं चला कि आज मैं बड़े भाई की क़मीज़ पहनकर स्कूल आया था।

छुट्टी की घण्टी बजी। मेरा रोज़वाला ऑटो आया। मैं झट से अन्दर हो लिया। सारा दिन मूड ऑफ़ रहा था। सोच रहा था कि जल्दी घर पहुँचकर भैया की क़मीज़ उतारकर बेफ़िक्र हो जाऊँ। बदक़िस्मती से मेरा ऑटो बीच रास्ते में ख़राब हो गया। ड्राइवर ने बताया कि ऑटो को ठीक कराने में घण्टा भर लगेगा। मेरा दिल बैठ गया। मैं ऑटो से उतरकर बाहर खड़ा हो गया। लेकिन अगले ही पल वापस ऑटो में बैठ गया। और चारों तरफ़ देखने लगा कि कहीं किसी ने मेरी लम्बी क़मीज़ देख तो नहीं ली। मेरे ऑटो का ड्राइवर चौंककर मुझे देख रहा था कि मैं क्या सोचकर ऑटो से उतरा और फिर फटाक से बैठ गया। पर वह कुछ बोला नहीं। मैं सोचने लगा कि दूसरा ऑटो करके घर चला जाऊँ। फिर याद आया कि सुबह यूनिफ़ार्म की हड़बड़ी में मम्मी से पैसे लेना भूल गया था।

पर तभी ख़्याल आया कि आज तो मैं भैया की क़मीज़ पहनकर आया हूँ। क्या पता उसमें थोड़े-बहुत पैसे हों! मैंने झट जेब टटोली। मेरा हाथ पचास के नोट से टकराया। अब मैं ख़ुशी से आइस्क्रीम खाते हुए दूसरे ऑटो में अपने घर की ओर जा रहा था।

ग्यारहवाँ भाग

कौतुक

मानव कौल
चित्रः राजीव आइप

"क्या ये सब तुम्हारी क्लास में पढ़नेवालों के सरनेम हैं?" अचर ने पूछा।

कौतुक ने हाँ में सिर हिला दिया।

"तुम्हारी माँ ने तुम्हारा सरनेम नहीं रखा है तो कुछ सोचकर ही नहीं रखा होगा।"

"उनका कहना है कि मैं बड़े होकर खुद चुनूँ कि मैं क्या होना चाहती हूँ।"

"कितनी अच्छी बात है। काश ऐसा सारे बच्चे कर पाते!"

पर इस अच्छी बात के चक्कर में मेरा अपने ही स्कूल में प्रवेश वर्जित हो गया है। अगर मेरा सरनेम होता तो मेरा भी एक पक्का दोस्त होता।'

"तुम्हारा कोई दोस्त नहीं है?"

"नहीं।"

"सलमा?"

"उसे पक्का दोस्त माना है पर उसे अभी ये बात नहीं पता। क्या पता वो मेरी पक्की दोस्त बनना चाहेगी कि नहीं?"

"मेरे बारे में क्या ख़्याल है?"

"ख़्याल?" कौतुक की समझ नहीं आया।

"मैं हो सकता हूँ तुम्हारा दोस्त? पक्का का पता नहीं पर दोस्त तो हो ही सकता हूँ।"

अचानक कौतुक की आँखों में चमक आ गई। वो अचर को देखने लगी। अचर एक लम्बा बूढ़ा आदमी था। बरगद के तने पर पड़ी सलवटें और अचर के चेहरे पर पड़ी झुर्रियाँ एक जैसी लगती थीं। कौतुक को लगता कि उनका चेहरा असल में बरगद का हिस्सा है। कौतुक सोचने लगी कि शायद इसलिए जब माँ सुबह सैर पर जाती हैं तो शहर से दूर के बरगद में उन्हें अपने पिता दिखते हैं।

कौतुक अचर को ताकती रही तो अचर ने फिर पूछा, "तो क्या सोचा?"

कौतुक ने अपना बैग खोला और अपने कम्पास बॉक्स से पुरानी पड़ गई पर्ची निकाली। कुछ देर वो अपनी पर्ची को देखती रही। फिर उसे अचर के हाथों में रख दिया।

"ये क्या है?"

"ये मेरी तरफ़ से आपके लिए है।"

अचर ने पर्ची खोली और पढ़ा, "मैं तुम्हारी बहुत अच्छी दोस्त हो सकती हूँ।"

"अच्छी दोस्त?" अचर ने पूछा।

"अच्छी दोस्त को आप पक्की दोस्त भी पढ़ सकते हैं।"

अचर मुस्करा दिया और उसने कौतुक को पर्ची वापिस कर दी।

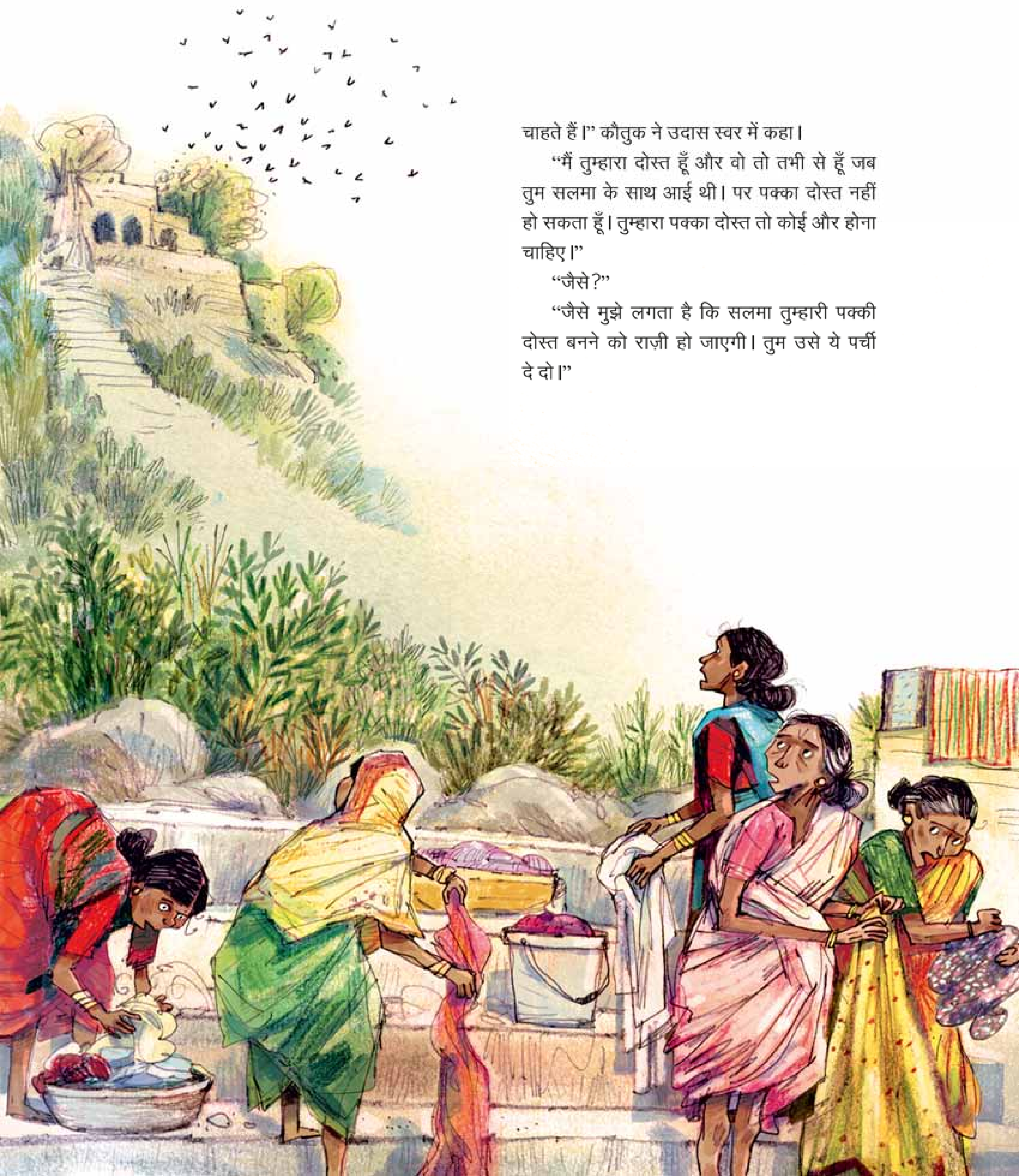
"क्या हुआ! आप मेरे पक्के दोस्त नहीं बनना

चाहते हैं।" कौतुक ने उदास स्वर में कहा।

"मैं तुम्हारा दोस्त हूँ और वो तो तभी से हूँ जब तुम सलमा के साथ आई थी। पर पक्का दोस्त नहीं हो सकता हूँ। तुम्हारा पक्का दोस्त तो कोई और होना चाहिए।"

"जैसे?"

"जैसे मुझे लगता है कि सलमा तुम्हारी पक्की दोस्त बनने को राज़ी हो जाएगी। तुम उसे ये पर्ची दे दो।"



"सलमा! क्या वो मेरी दोस्ती क़ुबूल करेगी?"

"वो तो तुरन्त लपक लेगी इस पर्ची को। पर..."

"आप हर बात में पर क्यों लगा देते हैं?"

"इसलिए क्योंकि तुम्हारी जितनी उम्र है, मेरे पास शायद उससे भी कम साल बचे हैं इस दुनिया में। हम दोनों दो अलग छोर पर हैं। मुझे थोड़ा सोच-समझकर बात करनी पड़ रही है।"

"अगर इतना सोच-समझकर बात करना पड़ता है तो हमारी दोस्ती का क्या मतलब है। देखो मैं तो सब कहे दे रही हूँ आपसे। ये बातें तो मैंने अपनी माँ से भी नहीं की हैं।"

"बात तो सच है। तो ठीक है फिर सुनो। मुझे लगता है कि तुम्हारा पक्का दोस्त वो बच्चा होना चाहिए जिसे तुम सबसे कम पसन्द करती हो।"

"अरे, ऐसा कैसे हो सकता है? तो फिर दोस्ती कैसे होगी?"

"दोस्त तो हैं न। सलमा है, मैं हूँ। तुम्हारी माँ भी तुम्हारी दोस्त हैं। तुम्हारी ये पर्ची विशेष है। इसे उन्हीं लोगों पर ख़र्च मत करो जो तुम्हारे जैसे ही हैं। इसे उसको दो जो तुमसे एकदम अलग हो। अगर तुम इस पर्ची को अपने जैसे ही किसी को दोगी तो सारे अच्छे लोग एक तरफ़ ही रहेंगे। और वो सारे लोग जो तुम्हारे जैसे नहीं हैं, जिन्हें जाना जा सकता था, दूसरी तरफ़ ही रहेंगे।"

"और अगर मैं अपने पक्के दोस्त के चक्कर में बदल गई तो?"

"बदल जाओ तो बदल जाओ। बदलना ही हमारी समझ को दर्शाता है। बदलो, पर सवाल करना बन्द नहीं करो।"

कौतुक देर तक सोचती रही। वो अचर को बताना चाहती थी कि उसने टीटू तक से अपनी पर्ची वापिस लेनी चाही थी। जबकि टीटू ही शायद वो लड़का था जिससे वो दोस्ती नहीं करना चाहती थी। ये पर्ची उसी की होनी चाहिए। कौतुक ने एक गहरी साँस ली।

"क्या हुआ?" अचर ने पूछा।

"एक पर्ची लिए कब से घूम रही थी कि एक पक्का दोस्त बनाऊँगी। पर आपने इस बात को अजीब ही कर दिया। अगर मेरा सरनेम होता तो मुझे इस तरह की कोई तकलीफ़ नहीं होती, पर वो भी नहीं है। बाक़ी सबके सरनेम हैं। स्कूल में एक भी बच्चा मेरे जैसा नहीं है।"

कौतुक ने अपना सिर झटका और नीचे पड़े पत्थरों से खेलने लगी। अचर के चेहरे पर एक मुस्कराहट थी। अचर को इस छोटी-सी बच्ची के दुख बहुत कोमल जान पड़ रहे थे। उसने अपना गला साफ़ किया और धीरे-से अपनी बात कही, "तुम अकेली नहीं हो। मतलब इस सरनेम के मामले में। देखो, मेरा भी सरनेम नहीं है।"

"पर आपका तो घर भी नहीं है। आप तो कुछ काम भी नहीं करते हो।"

"अरे! ये क़िला मेरा घर है और तुम्हें कहा था न मैंने कि हम काम करने के लिए पैदा ही नहीं हुए हैं। पर चलो मेरी बात छोड़ो। मैं तुम्हें और लोगों के बारे में बताता हूँ। शशांक, मेरठ का लड़का था। 2003 में वो हमारे देश का विदेश सचिव था। उसका सरनेम नहीं था। मॉलिएर, प्लेटो, सुकरात, कन्फ़्यूशियस इनका भी कोई उपनाम नहीं था। मेरे पास ऐसी लम्बी लिस्ट है।"

"यानी?"

"यानी तुम अकेली नहीं हो। ये कानून भी ग़लत नहीं है। इसका हमें अधिकार मिला है। बड़े-बड़े लोगों

ने ये काम किया था।"

"मैं बहुत बड़ी नहीं हूँ। मैं तो बस कौतुक हूँ।"

"बस कौतुक ही रहने की तो लड़ाई है।"

"मुझे लड़ना अच्छा नहीं लगता है..."

"दोस्त, कुछ अलग करोगी तो ये तो होगा ही न! क्या तुमने अपनी माँ के बारे में सोचा है? वो कैसे इस सबका सामना करती होंगी? तुम उनकी बेटी हो। तुम्हें भी लड़ना आना चाहिए।"

कौतुक देर तक अपने हाथों में रखी पर्ची को देखती रही। बीच में उसकी इच्छा हुई कि वो इस पर्ची का जहाज़ बना दे और नदी की तरफ़ उड़ा दे। पर तब तक उसकी आँखें छलकने लगीं। उसने पर्ची को अपनी जेब में रखा और अपना बैग उठाकर जाने लगी।

"तुम एक जादू देखना चाहोगी?" अचर ने कहा।

कौतुक रुक गई।

"कौन-सा जादू?" कौतुक ने पूछा।

"तुम अगर इस क़िले की दरार से भीतर जाओ तो दाहिने हाथ की तरफ़ तुम्हें एक खिड़की दिखेगी। उसके नीचे ईंटें रखी हुई हैं। तुम उन ईंटों का सहारा लेकर उस खिड़की को फाँदना और थोड़ा टहलकर आना।"

"इसमें क्या जादू है?"

"इसमें जादू तुम हो।"

कौतुक देर तक सोचती रही। वो घर नहीं जाना चाहती थी। वो अपनी पर्ची का जहाज़ बनाकर उड़ाना चाहती थी। वो कुछ करना चाहती थी जिससे वो खुद को तकलीफ़ पहुँचा सके। उसने अपना बैग वहीं बरगद की जड़ों के पास रखा और दरार के भीतर चली गई। बाहर से अचर की आवाज़ आई, "बस ध्यान रखना कि जैसे तुम गई हो वैसे ही वापिस भी आ जाना। वापसी का रास्ता भूलना नहीं।"

भीतर अँधेरा था। उस अँधेरे की ठण्डक कौतुक महसूस कर सकती थी। तभी उसके डरों ने उसे घेर लिया। वो सोचने लगी कि वो क्या कर रही है? वो ऐसा काम कैसे कर सकती है जिसका ज़िक्र वो अपनी माँ से न कर पाए। पर तभी कौतुक को दाहिने हाथ की तरफ़ खिड़की दिखी। खिड़की के नीचे ईंटें रखी हुई थीं। इससे पहले कि वो डर के मारे वापिस चली जाती, उसने जल्दी से उन ईंटों पर पाँव रखा और खिड़की के दूसरी तरफ़ कूद गई।

(जारी..)



हिमांशु व्यास

चित्रः तापोशी घोषाल



आकाश बन्धु

राहुल मजूमदार
बाँग्ला से अनुवाद : यायावर
चित्र : देबब्रत घोष

आकाश में चील चक्कर काट रही है। घण्टा भर इसी तरह चक्कर लगाती रहेगी। फिर वह चली जाएगी दूर उस गिरजाघर के शिखर की ओर। इस चील को मैं पहचानता हूँ। रोज़ ही तो देखता हूँ। चील के अलावा एक कौआ भी है जो अलसुबह मेरी खिड़की पर बैठकर आवाज़ देता है। जब तक मैं उठकर बैठ नहीं जाता तब तक वह बोलता ही रहता है। मेरे उठते ही वह बाज़ार की ओर फुर्र हो जाता है।



मैंने उसका नाम रखा है, बाबू। बाबू नाम का मेरा एक दोस्त था। तब मैं स्कूल में पढ़ता था। वो रोज़ मुझे बुलाकर ले जाता था। स्कूल में हम एक ही बेंच पर बैठते थे।

बाबू के जाने के बाद गौरैया का एक दस्ता किचिर-मिचिर करता हुआ राजू दा के घर से सन्तु के घर की तरफ़ चला जाता है। गिना तो पूरे ग्यारह पाए। इसी बीच एक गौरैया घण्टे भर बाद घूमकर आई। इधर-उधर देखा, फिर खिड़की से अन्दर आ गई। फुदकती हुई वो मेज़ पर आ बैठी। फिर सिर घुमाके मुझे देखते हुए रोटी खाने लगी। जिस दिन बिस्किट रहते, उस दिन तो उसकी पार्टी हो जाती। किचिर-मिचिर कर वो शुक्रिया अदा करती। मैं उसको बक्कू बूढ़ी बुलाता हूँ। उसके जाने के बाद आकाश देर तक वीरान रहता। बीच-बीच में दो-चार कौए, मैना और गौरैया गुज़रते दिखाई दे जाते।

सुबह नारियल के पेड़ों के ऊपर से सूरज की रोशनी के झाँकते ही एक चील आती है। आकाश में बहुत ऊँचाई पर चक्कर काटती रहती है। कभी फैला हुआ चक्कर लगाती है, कभी छोटा। कभी नीचे आती है, कभी बादलों की अटरिया पर पहुँच जाती है। पतझड़ के दिनों में वह जल्दी लौट जाती है। तब आकाश में बहुत से रंग-बिरंगे पतंगे दिखते हैं। पास के घर के दादा रोज़ सुबह छत पर चहल-क़दमी करते समय मेरे साथ थोड़ी देर बातें करते हैं। उन्हें मालूम है कि मुझे ज़्यादा बात करना पसन्द नहीं है। मैं तो आकाश देखने छत पर जाया करता हूँ। इसलिए थोड़ी देर बाद वे चले जाते हैं।

थोड़ी दूरी पर होती हैं मनोज के घर की रानी भाभी। उनका तीन साल का लड़का अचानक गुज़र गया था। रानी भाभी सारी दोपहर अपनी छत से मेरी ओर देखती रहती हैं। मुझे बहुत बुरा लगता है। रोना आता है। माँ की याद आती है। मैं जल्दी खिड़की से हट जाता हूँ। और बिस्तर पर तकिये में सिर छुपाकर सो जाता हूँ। कभी-कभी नींद खुलने पर धूप से दमकते आकाश में तीन चीलें उड़ती दिखती हैं। मैं अपने ज़ख़ीरे से एक किताब लेकर पढ़ने की कोशिश करता हूँ। सभी कई बार पढ़ी हैं। बीच-बीच में मनोज नई किताब दे जाता है तो वो पढ़ लेता हूँ।

घड़ी में तीन बजते ही एक हवाईजहाज़ गिरजाघर की तरफ़ से आकर कॉलेज की ओर घूम जाता है। तब पायलट होने की बहुत तेज़ इच्छा होती है। लेकिन ऐसा कभी हो न सकेगा। मैं बीमार हूँ। मैं ठीक से जानता भी नहीं कि क्या बीमारी है। डॉक्टर साहब ने बीमारी का नाम बताया तो था पर वो मुझे याद न रहा। याद रखने से होगा भी क्या? मैं दूसरी में पढ़ता था तब बीमारी का पता चला था। बाबा ने कितने ही डॉक्टरों को दिखाया। कितना इलाज करवाया। लेकिन कुछ फ़ायदा नहीं हुआ। डॉक्टरों ने विदेश जाने को कहा। मगर वो बहुत महँगा पड़ता। बाबा के पास इतना पैसा नहीं है। उनके लिए मुझे बहुत बुरा लगता है। ऑफ़िस, बाज़ार, खाना बनाना और साथ में मेरी देखभाल करना – उनका सारा वक़्त इन्हीं सब में चला जाता है। वे बहुत दुबले हो गए हैं। मेरी माँ नहीं है। माँ होती तो बाबा को इतना सब अकेले नहीं झेलना पड़ता। मुझे माँ की ज़रा भी याद नहीं है। जब मैं बहुत छोटा था तब माँ गुज़र गई थी। माँ कैसी होती है, मुझे नहीं मालूम।

मेरी खिड़की से जैसे सारा आकाश दिखाई देता है। पर रास्ता नहीं। शुरू-शुरू में खिड़की पर बैठे आकाश देखते रहने पर बुरा लगता था। हाँ, मुझसे मिलने तब दोस्त आते थे, पड़ोसी भी आते थे। हमारा



छोटा-सा कमरा भर जाता था। हम एक बरसाती में रहते हैं। अब लोग नहीं आते। इसलिए अब यह छोटा कमरा बहुत बड़ा लगता है। सारा दिन अकेले रहने से मेरा जी बैठ जाता है। पर यह सुखद है कि अब आकाश और आकाश में उड़नेवाले मेरे दोस्त हैं। वो सब हर रोज़ दिखकर मेरे साथ बने रहते हैं। मैं अपनी सारी तकलीफ़ें भूला रहता हूँ। पर जब रात आती है तो वे सब चले जाते हैं। आकाश भी जैसे आँखें मूँद लेता है।

अँधेरे में सिर्फ़ तारे टिमटिमाते हैं। उन्हें तो मैं पहचानता भी नहीं हूँ। इसलिए उनके साथ दोस्ती सम्भव नहीं है। बस जब चाँद आ जाता है तो मैं उससे कुछ बातें कर लेता हूँ।

बाबा ने कहा है कि वे आज ही मुझे तारों को पहचानने की एक किताब ला देंगे। मैं वो किताब देखकर तारों को पहचान लूँगा और उनसे दोस्ती कर सकूँगा। तब मुझे कोई दुख नहीं रहेगा, देखना।

हल्लो राजा!

राकेश रंजन
चित्रः तापोशी घोषाल

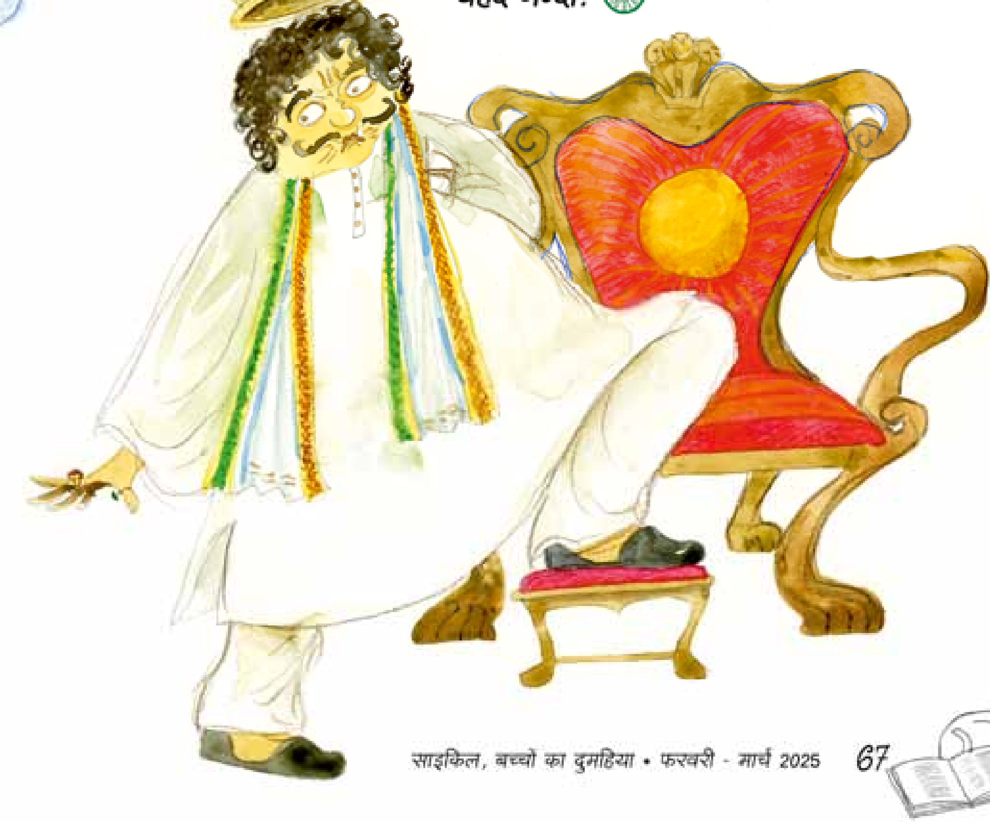


हल्लो राजा!
कभी-कभी तो कठिन धूप में
चल्लो राजा!
कभी-कभी तो चिन्ता-भय से
गल्लो राजा!
कभी-कभी तो जठरागिन में
जल्लो राजा!

जब तिनके-भर सुख की खातिर
स्याह जंगलों जैसे दुक्खों से जुज्झोगे
तब बुज्झोगे
परजा होना खेल नहीं है
किसी जनम में
इसका सुख से मेल नहीं है!

मैंने पूछाः
राजा, कैसी है तुकबन्दी?
राजा बोलेः
बेहद गन्दी!





आर. एन. आई. नम्बर - DELHIN/2018/76181 द्विमासिक

फागुन की खुशियाँ मनाएँ!

भवानीप्रसाद मिश्र

चलो, फागुन की खुशियाँ मनाएँ!
आज पीले हैं सरसों के खेत, लो
आज किरनें हैं कंचन समेत, लो
आज कोयल बहन हो गई बावली
उसकी कुहू में अपनी लड़ी गीत की
हम मिलाएँ।

चलो, फागुन की खुशियाँ मनाएँ!
आज अपनी तरह फूल हँसकर जगे
आज आमों में भौरों के गुच्छे लगे
आज भौरों के दल हो गए बावले
उनकी गुनगुन में अपनी लड़ी गीत की
हम मिलाएँ!

चलो, फागुन की खुशियाँ मनाएँ!
आज नाची किरन, आज डोली हवा
आज फूलों के कानों में बोली हवा
उसका सन्देश फूलों से पूछें, चलो
और कुहू करें गुनगुनाएँ!



Price : ₹150.00

ST 0000412

मुद्रक तथा प्रकाशक संजीव कुमार द्वारा
इकतारा ट्रस्ट के लिए मल्टी कलर सर्विसेज़
शेड नं. 92, डी.एस.आई.डी.सी.,
ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़ 1,
नई दिल्ली 110020 से मुद्रित एवं सी-404, बेसमेंट,
डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली 110024 से प्रकाशित